अध्यात्म क्या था ?
क्या हो गया ? क्या होना चाहिए ?

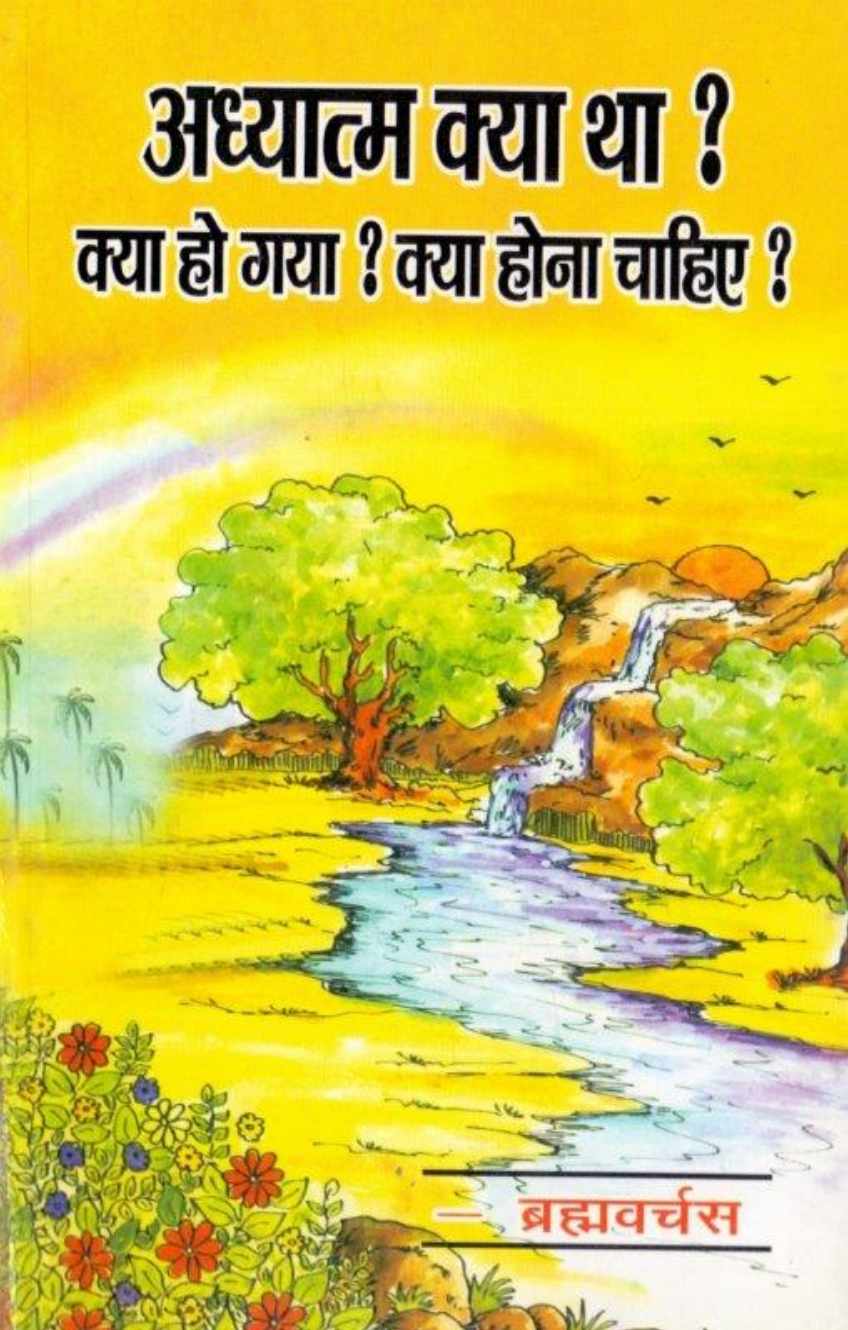

— ब्रह्मवर्चस

अध्यात्म क्या था ? क्या हो गया ? क्या होना चाहिए ?

संपादक :

ब्रह्मवर्चस्

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

सन् २००९

मूल्य : १५.०० रुपये

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

सम्पादक :
ब्रह्मवर्चस्

२००९

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस,
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

प्राक्कथन

आत्मिकी एक सर्वांगपूर्ण आत्म–परिष्कार का विज्ञान है । अध्यात्म, धर्म–धारणा इत्यादि नामों से इसे पुकारा जाता रहा है । अध्यात्म क्षेत्र को विज्ञान की ओर से सतत् चुनौती मिलती रहती है, क्योंकि उस पर भ्रान्तियों, मूढ़मान्यताओं का एक कुहासा छाया हुआ है । अध्यात्म के शाश्वत, सनातन अनादि रूप को ऋषियों ने आप्तवचनों के माध्यम से प्रकट किया एवं वही आज हमारे समक्ष बदलते हुए रूप में विद्यमान हैं । इसका क्या कारण है ? आखिर क्यों विज्ञान को ऐसा मौका मिला कि वह अध्यात्म पर प्रहार कर सका ? अध्यात्म ने विज्ञान द्वारा उठाये गये संदेहों पर विवेक सम्मत उत्तर देने के स्थान पर खीझ अधिक व्यक्त की । यही कारण है कि अध्यात्म विज्ञान संदेहों, अप्रामाणिकता के आरोपों का शिकार होता चला गया । यह मध्यकाल के पतन पराभव की चरम परिणति मानी जा सकती है ।

अब समय आ गया कि अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर प्रमाणित कर जन साधारण को बताया जा सके कि अध्यात्म अनुशासन एवं साधनायें उतनी ही विज्ञान सम्मत हैं, जितनी कि स्वयं पदार्थ विज्ञान की विधायें । अध्यात्म वस्तुतः क्या था ? मध्यकाल में क्या रूप इसने ले लिया और आज की परिस्थितियों में क्या व कैसा होना चाहिये ? यही इस पुस्तक की विषय वस्तु है । यह दोनों ही विद्याओं के जानकारों के लिये लाभकारी है । जनसाधारण के लिये तो है ही । इससे यह विश्वास सुदृढ़ होने में मदद मिलेगी कि अध्यात्म मूल्यों को जीवन में किस रूप में उतारना चाहिये और यह किसी भी हालत में घाटे का नहीं, पूर्णतः नफे का सौदा है ।

–ब्रह्मवर्चस्

विषय सूची

१	विज्ञान और उसकी पृष्ठभूमि	५
२	अध्यात्म में भ्रान्तियों का समावेश	१२
३	प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर	१९
४	समग्र जीवन को अध्यात्म से ओत-प्रोत करें	२५
५	वर्तमान और भविष्य का क्रिया-कलाप	३३
६	नव सृजन की विशालकाय कार्य पद्धति	४१
७	व्यापक क्षेत्र में आलोक वितरण	५५
८	बोओ और काटो का सुनिश्चित सिद्धान्त	६०
९	परिवर्तनकारी प्रचण्ड महाकाली का अवतरण	६६
१०	आत्मक्षेत्र का भावी संकल्प	७२

विज्ञान और उसकी पृष्ठभूमि

यह विश्व–ब्रह्माण्ड चेतना और पदार्थ से मिलकर बना है । पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान एवं प्रयोग को भौतिक विज्ञान कहते हैं और चेतना सम्बन्धी तत्वज्ञान एवं उत्कर्ष की विधि–व्यवस्था को अध्यात्म कहते हैं । दोनों के सम्मिश्रण से ही "विज्ञान" शब्द की सम्पूर्णता और सार्थकता सिद्ध होती है ।

भौतिक विज्ञान का तारतम्य तो अग्नि प्रज्ज्वलन, पशुपालन. कृषि, वस्त्र, निवास, पात्र, औजार आदि के साथ ही चल पड़ा था, पर उसका चरम विकास इस शताब्दी में हुआ है । जितने प्रकार के यंत्र–उपकरण, आयुध–रसायन एवं सुविधा–साधन प्रस्तुत शताब्दी में विनिर्मित हुए हैं, उतना अतीत में कभी नहीं हुआ था ।

भौतिक विज्ञान के प्रति जन साधारण की अभिरुचि में असाधारण रूप से अभिवर्धन हुआ है । यहाँ तक कि छोटे–बड़े सभी विद्यालयों में विज्ञान की जानकारी अनिवार्य रूप से सम्मिलित की गयी है । उसे अनुपयुक्त दिशा मिली, तो जितना विकास हुआ है, उतना विनाश भी हो सकता है । इस संदर्भ में विस्तृत चर्चा इन पंक्तियों में करना अप्रासंगिक होगा । कहा यह भर जा रहा है कि इस प्रगतिक्रम में अध्यात्म–विज्ञान पिछड़ गया । इसकी वैसी प्रगति नहीं हो सकी, जिससे गाड़ी के दो पहिये की तरह, पक्षी के दो पंखों की तरह उनका संतुलन बना रहता है । इस असंतुलन के कारण ही विज्ञान को उद्धत क्रम अपनाने और विनाश लीलायें रचने का अवसर मिला है । यदि दोनों एक–दूसरे का सहयोग करते रहते, तो समग्र प्रगति होती और धरती पर स्वर्ग का अवतरण संभव हो गया होता ।

विज्ञान की मूल प्रकृति यह है कि वह प्रतिपादनों को प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर कसता है । इससे कम में न उसे संतोष होता और न समाधान । भौतिक विज्ञान के प्रतिपादन को प्रत्यक्ष की कसौटी पर कसा जा सकता है, तथ्यों की यथार्थता परखने

की हर किसी को छूट है। यही कारण है कि उसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध मानी गयी है। जिसे जिस प्रकार की जितनी आवश्यकता थी, उसने उसे निःसंकोच अपनाया भी है।

पर अध्यात्म विज्ञान के सम्बन्ध में भारी कठिनाई यह है कि उसके प्रतिपादन प्रत्यक्ष की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। जो कहा जाता है, वह अदृश्य से, परलोक से संबंधित होता है; तर्क, तथ्य, प्रमाण और प्रत्यक्ष के आधार पर उसको विश्वस्त सिद्ध नहीं किया जा सकता। दूसरी कठिनाई यह हुई कि अनेक धर्म-सम्प्रदाय एवं दर्शनों ने उसे एक रूप से नहीं कहा। उनके कथनों में भारी अन्तर है। कहीं-कहीं तो उन प्रतिपादनों में जमीन-आसमान जैसा अन्तर है। उनका पारस्परिक विरोध-मतभेद यह संदेह उत्पन्न करता है कि जब भौतिक विज्ञान के सभी प्रतिपादन एक ही तरह के हैं, तो अध्यात्म में इस तरह का अन्तर क्यों है ? या तो इनमें एक सही और अन्य गलत हैं अथवा सभी गलत हैं। तथ्यों का प्रत्यक्षवाद पर खरा उतरना और अनेक वर्गों द्वारा अनेक प्रकार की परस्पर विरोधी बातों का कहा जाना-यह दो ऐसे प्रत्यक्ष कारण हैं, जिनके कारण अध्यात्म को पदार्थ विज्ञान जैसी मान्यता नहीं मिली। सच तो यह है कि इस बुद्धिवाद के युग में उसकी ओर उपेक्षा ही नहीं, अविश्वास और उपहास का क्रम भी चल पड़ा है।

चेतना पदार्थ से बढ़कर है। प्राणी ही पदार्थों का इच्छानुसार उपयोग करता है। इस प्रकार अध्यात्म की वरिष्ठता सिद्ध हुई। भौतिक विज्ञानी पदार्थ ज्ञान को जानकर अपनी जानकारी और क्षमता का उपयोग करके भरपूर लाभ उठाते हैं। तब अध्यात्म विज्ञानियों को अपने क्षेत्र में उसी प्रकार सफल और समुन्नत क्यो नहीं होना चाहिये ? देखा ठीक इसके विपरीत जाता है। अध्यात्मवादी कल्पना की उड़ानें उड़ते और किम्वदन्तियों का आश्रय लेकर चमत्कारी ऋद्धि-सिद्धियों का वर्णन करते हैं, पर उनमें से किसी को भी प्रत्यक्ष दिखा नहीं पाते। अपने मन की शान्ति और परलोक में स्वर्ग मुक्ति जैसी सद्गति की संभावना को

प्रामाणिक कैसे कहा जाय ? उन्हें मूढ़मान्यता कहकर झुठलाया क्यों नहीं जाय ?

यह असमंजस ऐसे हैं, जिनके कारण विज्ञान का भौतिक पक्ष ही लोगों के गले उतरा और अध्यात्म पक्ष मात्र श्रद्धा या भावुकता के कच्चे धागे पर लटका रहा । खरे सोने को आग पर तपाने और कसौटी पर सौ बार कसे जाने में भी किसी को आपत्ति नहीं होती, फिर अध्यात्म को कल्पना क्षेत्र तक ही क्यों सीमित रहना पड़े ? वह क्यों न अपने प्रतिपादनों को इस प्रकार प्रस्तुत करे, जिसे कोई चुनौती देने या झुठलाने का प्रयत्न न कर सके । जो व्यक्ति अध्यात्म का जोर-शोर से प्रतिपादन करते हैं, उन्हें तो अपने आप में ऐसा होना ही चाहिये था कि दीन-हीन या असहाय होने जैसी स्थिति में घिरा न देखा जाय । वे अपनी विशिष्टता से समाज को किसी प्रकार प्रभावित एवं समुन्नत तो करें । उनका समीपवर्ती वातावरण एवं परिकर ऐसा तो हो, जिनके सम्बन्ध में यह असंदिग्ध रूप से कहा जा सके कि कथनी और करनी में एकता है ।

भौतिक विज्ञानियों को तो श्रेय, सम्मान, पद, वैभव आदि मिलता है, उनकी कृतियों को जन-साधारण द्वारा सराहा और चिरकाल तक स्मरण किया जाता है । यदि आध्यात्म की वरिष्ठता है, तो उस प्रयास में संलग्न होने की उपलब्धियाँ उससे कम नहीं वरन् अधिक ही मिलनी चाहिये, पर ऐसा देखा नहीं जाता । भारत में ६० लाख सन्त-महात्मा हैं । धर्म को व्यवसाय बनाकर चलने वाले ब्राह्मण वर्ग की भी इतनी ही संख्या मानी जाय तो साधु-ब्राह्मण मिलकर ६०+६०=१२० लाख होते हैं । इसका तात्पर्य यह हुआ कि भारत के नागरिकों में ५० व्यक्तियों के पीछे एक धर्म या अध्यात्म के माध्यम से जीविकोपार्जन करने वाला है । यदि इन्हें केवल हिन्दू समाज का आँका जाय, तो अनुपात और भी दूना हो जाता है । हर २० या ३० हिन्दुओं के पीछे एक सन्त, महन्त, ब्राह्मण, धर्मोपदेशक, पुजारी आता है । इतने अध्यात्मवादियों की निज की स्थिति अपेक्षाकृत ऊँची होनी चाहिये थी, पर वैसा न

होकर यह भ्रम फैलाते और जैसे-तैसे अपनी आजीविका उगाहते हैं । उनकी स्थिति का पर्यवेक्षण किया जाय, तो सामान्य नागरिकों की तुलना में स्वास्थ्य, शिक्षा, चरित्र, प्रतिभा, उपयोगिता की दृष्टि से घटिया ही पड़ते हैं ।

देश में में सात लाख गाँव हैं, ६० लाख संत, जो पूरा समय धर्म-अध्यात्म के नाम पर ही व्यतीत करते हैं । एक गाँव पीछे साढ़े आठ संत आते हैं, जिनका व्यय भार जनता को ही वहन करना पड़ता है । यह समुदाय यदि अध्यात्म की वैज्ञानिक विधि-व्यवस्था से अपरिचित है, तो कम से कम समाज सेवक की, सुधारक की भूमिका तो निभा ही सकता है । इतने से भी प्रौढ़ शिक्षा, वृक्षारोपण, व्यायामशाला, स्वच्छता, सहकारिता, कुरीति उन्मूलन जैसे सरल कार्य तो आसानी से कर सकता है । यदि इतना बन पड़ा होता, तो देश की नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में कायाकल्प जैसी स्थिति उत्पन्न हो गयी होती; किन्तु इस प्रकार का पर्यवेक्षण करने पर स्थिति निराशाजनक ही दीखती है । जिनके द्वारा सेवा कार्य हो रहे हों, और जो देश, धर्म, समाज, संस्कृति के उत्कर्ष के लिये कुछ करते हों उन सराहनीय संतों की गणना उँगलियों पर गिनने जितनी है ।

धार्मिक क्षेत्रों में जो प्रवृत्तियाँ चलती हैं, उनमें तीर्थयात्रा, धार्मिक मेले-ठेलों, स्नान, प्रतिमा-दर्शन, कीर्तन, जागरण, भण्डारे तथा दूसरे प्रकार के खर्चीले कर्मकाण्डों की ही भरमार दीखती है । इन प्रयोजनों में लगी हुई जनशक्ति द्वारा यदि देश की अस्तव्यस्तता और दुर्दशा को समझा गया होता और उनके लिये सुधार कार्यों को अपनाया गया होता, तो स्थिति वैसी न रहती, जैसी कि आज है । गाँजा, भाँग, चरस, धूम्रपान की भरमार-अन्ध-विश्वासों को बढ़ावा देने वाले क्रिया-कृत्य ही इस क्षेत्र में बढ़ावा पाते दीखते हैं ।

इस पर्यवेक्षण से भौतिक एवं आध्यात्मिक विज्ञानवादियों की कृतियों और उपलब्धियों में भारी अन्तर दीखता है । उसी अनुपात से दोनों वर्गों की वरिष्ठता-कनिष्ठता का मूल्यांकन किया जाता

है । इसे दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिये कि अध्यात्म तत्वज्ञान की गरिमा भौतिकविज्ञान की महिमा के आगे हेटी पड़ रही है । व्यक्ति की कृतियों के आधार पर ही उनका स्तर आंका जाता है । तराजू पर तौलते हैं, तो वैज्ञानिक भारी पड़ता है और धर्म-सेवी हल्का । इससे पता चलता है कि तथ्य किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं । अपने मुँह मियाँ-मिट्ठू बनने से कुछ अनगढ़ लोग ही भ्रम में पड़ सकते हैं, विज्ञजनों को वस्तुस्थिति समझाना तो तथ्यों के आधार पर ही संभव हो सकता है ।

जब दीखता है कि इतनी बड़ी जनसंख्या और उसके निर्वाह तथा आडम्बरों पर खर्च होने वाला विपुल धन व्यर्थ ही जा रहा है, तो विचारशीलों में क्षोभ, आक्रोश, विरोध, तिरस्कार, का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है, उन्हें शब्दाडम्बर से संतोष नहीं कराया जा सकता ।

क्या अध्यात्म की प्रकृति ही ऐसी है ? इसके उत्तर में स्पष्टतया "नहीं" ही कहना पड़ेगा, क्योंकि इतिहास के पृष्ठ पलटने से जब अतीत का पर्यवेक्षण किया जाता है, तो प्रतीत होता है कि अध्यात्म की गरिमा हिमालय जैसी ऊँची, धवल और शान्ति भरी शीतलता प्रदान करती रही है । ऋषि-मनीषियों की संख्या कम ही थी, तो भी उनमें से प्रत्येक की निजी गरिमा, साधना एवं लोकसेवा ऐसी थी, जिसका स्मरण करने मात्र से आज भी हमारा शिर ऊँचा होता है ।

आत्मविज्ञानी अपने शरीर और मनःक्षेत्र को प्रयोगशाला के रूप में प्रयुक्त करते थे और उसमें शोध प्रयास जारी रखते हुए व्यक्तित्व को अगणित विशिष्टताओं से सम्पन्न करते थे । ऋद्धि-सिद्धि उनके करतलगत होती थीं । अपने को तपाकर वे तपस्वी कुन्दन जैसे चमकते और बहुमूल्य सिद्ध होते रहे, तत्वज्ञान की दर्शन परक और अध्यात्म की योग-प्रयोगों से भरी कृतियाँ प्रस्तुत करते रहे । उनके आश्रम आरण्यकों में गाय-सिंह एक घाट पर पानी पीते थे । जो वहाँ निवास करते थे, वे अपना दृष्टिकोण परिष्कृत एवं व्यक्तित्व उत्कृष्ट बनाकर लौटते थे ।

उनका सान्निध्य पारस पत्थर जैसा और उनका अनुग्रह कल्पवृक्ष जैसा सिद्ध होता था । वे अमृतमय रहते और आनन्द बाँटते थे । व्यक्ति और समाज की समस्यायें हल करने में उनकी भूमिका ऐसी थी, जिसको भूरि-भूरि सराहा जाय ।

इन पंक्तियों में ऋषि गाथाओं का गुणगान करने की गुंजायश नहीं है । फिर भी व्यास का साहित्य सृजन, जमदग्नि का आरण्यक, नागार्जुन का रसायनशास्त्र, चरक का वनस्पति विज्ञान, सुश्रुत की शल्यचिकित्सा, याज्ञवल्क्य का यज्ञ अनुसंधान, विश्वामित्र की मंत्र शक्ति, शंकराचार्य की दिग्विजय, बुद्ध का धर्मचक्र प्रवर्तन, परशुराम का अनीति उच्छेदन, वशिष्ठ द्वारा राम के माध्यम से त्रेता में सतयुग की वापसी, द्रोणाचार्य की धनुर्विद्या, दधीचि का इन्द्र वज्र, भागीरथ का गंगावतरण, पाणिनि का व्याकरण, पातंजलि का योग, वैशेशिक का अणुविज्ञान, दक्ष का भौतिक विज्ञान, अर्जुन का युद्ध कौशल, अगस्त्य का समुद्रपान, नारद का लोकान्तर गमन, विश्वकर्मा का शिल्प, कौडिन्य का विदेशों में संस्कृति-प्रचार, चाणक्य का विश्वविद्यालय स्थापन आदि अगणित कृत्य ऐसे हैं, जिन्हें हर दृष्टि से असाधारण ही कहा जा सकता है । शूत-शौनक ऋषि स्थान-स्थान पर धर्म-चर्चा आयोजन करते थे । आत्मशक्ति की ऐसी प्रबलता थी जिसने वाल्मीकि अंगुलिमाल जैसों को बदल कर कुछ से कुछ बना दिया । समर्थ रामदास ने स्वतंत्रता आन्दोलन की योजना बनायी और शिवाजी, प्रताप, छत्रसाल जैसों के माध्यम से उसे कार्यान्वित कराया । चन्द्रगुप्त की सफलताओं का श्रेय चाणक्य को था । कबीर, रैदास जैसे सन्तों ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाया । परमहंस के शिष्य विवेकानन्द ने लड़खड़ाती संस्कृति को पैर टिकाने का अवसर दिया । विरजानन्द के शिष्य दयानन्द ने पाखण्डों के घुर्रे बिखेर दिये । ऐसे थे अनेकों प्रतिभावान अध्यात्मवादी जिनके व्यक्तित्व की गाथा गाने और कर्तृत्व की गाथा गाने वाले तक में रोमाञ्च हो आते हैं । उन्होंने हर्षवर्धन, अशोक, कर्ण, हरिश्चन्द्र, अश्वपति, चक्रवर्ती भरत जैसों की श्रृंखला खड़ी कर दी थी ।

जिनका संरक्षण सावित्री, सुकन्या, कुन्ती, गान्धारी, अनुसुइया, अरुन्धती महिला वर्ग को सच्चे अर्थों में देवी सिद्ध कर सका। ध्रुव, प्रहलाद, लव-कुश, अभिमन्यु जैसे बालक कहीं से कहीं जा पहुँचे, जिनकी गौएँ राजा दिलीप तक ने चरायीं, जिसमें प्रवेश पाने के लिये विश्वामित्र, भतृहरि जैसों ने अपने राज-पाट त्यागे, उस क्षेत्र को साधारण नहीं कहा जा सकता, सामान्य को असामान्य बना देने वाले उस विज्ञान को जाल-जंजाल नहीं कहा जा सकता।

उनके अजस्र अनुदान विश्वामित्र को मिले थे। उन्हीं का प्रताप था कि भारत जगद्गुरु कहलाया। विशाल भारत के तैंतीस करोड़ नागरिक तैंतीस कोटि ऋषियों में गिने गये। यह ऋषियों द्वारा प्रयुक्त अध्यात्म की परिणतियाँ हैं। उनके शाप से परिक्षितों को भूमिसात होना पड़ता था। उनके वरदान से दशरथ को चार भगवान जैसे पुत्रों का सुयोग मिला था, जो इन्द्र और चन्द्र को शाप दे सकते थे, जो भारतभूमि को 'स्वर्गादपि गरीयसी" बनाने का सौभाग्य प्रदान कर सके थे।

मनुष्य-मनुष्य सब एक जैसे हैं, पर उनमें से अधिकांश के साधारण स्थिति में रहते हुए भी कुछ का असाधारण हो जाना यही सिद्ध करता है कि जिनने महानता अर्जित की, उनके पास कोई न कोई समर्थ अवलम्बन रहा होगा। यह अवलम्बन और कुछ नहीं मात्र अध्यात्म ही है, जो इसी हाड़-मांस के पुतले को धरती का देवता कहलाने का गौरव प्रदान करता है। यह मात्र कथन ही नहीं हैं, अध्यात्मवेत्ता वस्तुतः होते भी ऐसे ही हैं।

स्पष्ट है कि आत्मविज्ञान अपने आप में महान है, उसकी क्षमता एवं गरिमा भौतिक विज्ञान से किसी भी प्रकार कम नहीं, वरन् बढ़कर ही है, किन्तु जब लोग असली हीरा प्राप्त करने में आवश्यक साधन न जुटा सकें और उस ललक को काँच के नकली उपकरणों से पूरा करना चाहें तो उन्हें अभीष्ट गौरव प्राप्त होने से वंचित ही होना पड़ेगा। आज लोग छुट-पुट पूजा-पत्री और नाम रटन्त मात्र से उन लाभों को प्राप्त करना चाहते हैं, जो यथार्थता

अपनाने वाले को प्राप्त होते हैं । घर छोड़ देने, भिक्षा पर निर्वाह करने, वस्त्र रंगा लेने मात्र से कोई सच्चा अध्यात्मवादी नहीं बन सकता, उसे समूचे जीवन के कण-कण में, काया के रोम-रोम में, चिन्तन की प्रत्येक लहर में अध्यात्म आदर्शों को बसाना पड़ता है । उचित मूल्य पर उचित उपलब्धि हस्तगत होने का सिद्धान्त है । इसे छोड़कर पगडण्डियों में भटकने वाले थकान, खीझ, असफलता और उपहास ही प्राप्त करते हैं ।

अध्यात्म में भ्रान्तियों का समावेश

अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश करने वालों को उसकी वर्णमाला पढ़नी चाहिये और यह समझना चाहिये कि ब्रह्मचेतना का अवतरण किस आधार पर मनुष्य की सत्ता में प्रवेश करके उसे असाधारण रूप से शक्ति सम्पन्न बनाता है और वह अद्भुत कार्य कर दिखाने में क्यों कर समर्थ होता है ? व्यक्ति के विकास और प्रतिभाओं-विभूतियों से सुसज्जित होने जैसी उसकी स्थिति क्यों कर बन पड़ती है ?

परब्रह्म ब्रह्माण्ड व्यापी चेतना शक्ति है । उनकी नियमन-व्यवस्था के अन्तर्गत ही समूचा सृष्टि क्रम चल रहा है । वह किसी से राग-द्वेष नहीं बनाती, मनुष्य की तरह अपने पराये का भेद-भाव भी उसके मन में नहीं होता, न उसे किसी की मनुहार चाहिये और न किसी का उपहार । जो समदर्शी और न्यायकारी है, उसको किसी के साथ इस आधार पर लगाव नहीं हो सकता कि वह उसका बार-बार नाम रटता या अक्षत पुष्प चढ़ाता है ।

प्रभु की अनुकम्पा किसी कारण विशेष से बरसती है और वहाँ जमा होती है, जहाँ उसे जमा होना चाहिये । गर्मी के बाद जब जल-थल सभी गरम हो उठते हैं, तब उसका संतुलन बिठाने के लिये वर्षा ऋतु आती है । पानी सर्वत्र बरसता है, पर वह जमा वहीं होता है, जहाँ निचान है, गड्ढा या गहराई है । चट्टानों पर बरसने पर भी वह पानी वहाँ जमा नहीं हो पाता ।

परब्रह्म के साथ जुड़ने और उसकी क्षमताओं-अनुकम्पाओं

तथा विभूतियों को अपने पास तक बुलाने के लिये निजी–चुम्बकत्व चाहिये । चुम्बक अपने इर्द–गिर्द पड़े हुए लोहे के टुकड़ों को अपनी ओर खींच लेता है या स्वयं किसी बड़े चुम्बक की ओर खिंच जाता है । परमात्मा एक बड़ा चुम्बक है । हम उसकी ओर खिंच कर अपने में उन विशेषताओं को धारण कर सकते हैं, जो उसमें हैं ।

जहाँ वृक्ष सघन होते हैं, वहाँ वर्षा भी खूब होती है । पेड़ों का आकर्षण बादलों को नीचे घसीटता है और उन्हें बरसने के लिये बाधित करता है । वर्षा का जल वहीं जमा होता है, जहाँ गहराई होती है । नदी–नाले–तालाब इसीलिये जल से भरे रहते हैं कि उनमें गड्ढा होता है । हमें अपनी पात्रता विकसित करनी चाहिये, ताकि उसके अनुरूप परमात्मा का अनुग्रह और जन–समाज का सहयोग–सम्मान प्रचुर मात्रा में हस्तगत हो सके ।

मानवी काया जादू की पिटारी है । उसके कण–कण में विलक्षण क्षमताओं के भण्डार भरे पड़े हैं । नन्हे से परमाणु के अन्तराल में वही सारी गतिविधियाँ चलती हैं, जो बड़े रूप में सौर मण्डल के विशाल परिवार में चलती हैं, अन्तर इतना ही है कि वे प्रसुप्त और अदृश्य स्थिति में बीज रूप में अपने वैभव को छिपाये रहती हैं । इन्हें यदि सही ढंग से उभारा जा सके, तो पिण्ड रूप में दृष्टिगोचर होने वाला मनुष्य ब्रह्माण्डीय चेतना का प्रतिनिधि बन सकता है । मस्तिष्क के ७ प्रतिशत भाग का ही उपयोग जाना जा सका है, पर उसके ९३ प्रतिशत उस भाग से अपरिचित ही हैं, जो अवचेतन–सुपरचेतन आदि के नाम से जाना जाता है । इस प्रकार शरीर की नस–नाड़ियों में जो विद्युत प्रवाह बहता है, उसका एक बहुत थोड़ा अंश शरीर संचालन भर में काम आता है, कुछ बिजली सोचने समझने भर में खर्च हो जाती है । उसका उच्चस्तरीय भाग, जो प्राण की प्रचण्ड शक्ति के रूप में हमारे भीतर विद्यमान है, उसका उपयोग नहीं के बराबर हो पाता है । कदाचित् इस प्राण–प्रखरता को जाग्रत, सशक्त और क्रियाशील बनाया जा सके, तो उतने भर से मनुष्य साधारण दीखते हुए भी

असाधारण बन सकता है और महामानवों, ऋषियों, देवात्माओं की श्रेणी में बैठ सकने की स्थिति में अपने आप को समुन्नत कर सकता है । यह सफलता एवं उपलब्धि हस्तगत कर सकना पूर्णतया उसके हाथ की बात है ।

मनुष्य की क्षमतायें, दोष–दुर्गुणों से, कषाय–कल्मषों से, कुकर्म और दुश्चिन्तन से दबी रहती हैं । अध्यात्म का पहला चरण यह है कि इन सब मलीनताओं से जूझें और उन्हें निरस्त करके रहें । इस प्रक्रिया को 'तप' कहते हैं । तप का अर्थ है–अपने को तपाना । तपाने का तात्पर्य है अपनी बहिरंग और अन्तरंग अनुपयुक्तताओं को तीक्ष्ण बुद्धि से खोज निकालना और उनके साथ जुड़े–बँधे स्वभाव और मन को ठोक'–पीटकर सही करना । बाहर के शत्रुओं से लड़ना सरल पड़ता हैं, क्योंकि वे बाहर होते हैं और आँखों से दीखते हैं । उनके ऊपर कई साधनों से प्रहार या बचाव किये जा सकते हैं, पर अपने आप से कैसे जूझा जाय ? दुष्प्रवृत्तियाँ स्वभाव का अंग बन कर अभ्यास में उतर जाती हैं और आदत बन कर इस प्रकार इसी काया में छिप जाती हैं कि उन्हें देख–समझ पाना तक कठिन पड़ता है । ऐसी दशा में कोई सूक्ष्मदर्शी ही उन्हें खोज सकता है और मित्र न मान कर शत्रु होने की मान्यता बदल सकता है । निपटने की रणनीति इसके उपरान्त ही बनती है ।

गीता में अर्जुन को भगवान ने आनाकानी करने पर उसको जिस महायुद्ध में प्रवृत्त किया था, उसकी आध्यात्मिक व्याख्या अपनी सहचरी–कुटुम्बी बनकर रह रही अवांछनीयता के विरुद्ध प्रबल पराक्रम के साथ लड़ने में जुट पड़ने के रूप में ही की थी । यह अनिवार्य युद्ध ही तप है । मात्र काया–कष्ट का अतिवाद अपनाने को तप नहीं कहते । इसके लिये अपने आप को धोबी की तरह कपड़े धोने में जो भट्टी चढ़ाने, साबुन लगाने, पीटने पछाड़ने जैसे काम करने पड़ते हैं, उन सभी का जुगाड़ बिठाना पड़ता है । तपस्वियों को यही रीति–नीति अपनानी पड़ती है ।

तप के चार प्रधान आधार हैं––(१) इन्द्रिय संयम (२) समय

संयम (३) अर्थ संयम (४) विचार संयम । इन चारों में ही जीवन बँटा और बिखरा हुआ है । इन्हें कार्यान्वित करने में जीवन का प्रायः प्रत्येक पक्ष लपेट में आता है । इसलिये इस परिशोधन से एक प्रकार से समग्र जीवन का ही परिशोधन करना पड़ता है । मन की ललक–लिप्साओं से स्पष्ट शब्दों में 'नहीं' कहना पड़ता है । कहना ही नहीं, वरन् दूरदर्शी विवेकशीलता को मूर्धन्य मानकर उसके आदेशों का परिपालन अनिवार्य हो सके, इसके लिये पुराने व्यक्तित्व को प्रशिक्षित करना पड़ता है ।

आत्मशोधन एवं पात्रता संवर्धन के लिये जो दूसरा चरण उठाना पड़ता है, वह है–'योग ।' योग का शब्दार्थ जोड़ना होता है । जुड़ना किससे ? परमात्मा से, परब्रह्म से । उसका एक ही उपाय है कि मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई महानता को अपने जीवन क्रम में सम्मिलित करना । सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय ही मनुष्य का परमेश्वर है । उसके समग्र स्वरूप को तो अचिन्त्य ही कहा जा सकता है । मनुष्य का परमेश्वर क्या हो सकता है ? उसे परमेश्वर न कहकर विराट्–ब्रह्म या विश्वब्रह्म ही कहना चाहिये, जीवन ब्रह्म भी ।

जीवन का योग इसी परमेश्वर के साथ हो सकता है । संक्षेप में इसे सत्प्रवृत्ति संवर्धन भी कह सकते हैं । इस संबंध में वेदान्त दर्शन के सूत्र स्थिति को पूर्णतया स्पष्ट कर देते हैं । सोऽहं । शिवोऽहम् । सच्चिदानंदोऽहम् । तत्वमसि । अयमात्मा ब्रह्म, आदि शब्दों में जो रहस्य सन्निहित हैं, उसका तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य का अन्तरंग और बहिरंग देवोपम होना चाहिये ।

नर को नारायण–पुरुष को पुरुषोत्तम–अणु को विभु बनाने के लिये जो साधना करनी पड़ती है, उसके दो पक्ष हैं–प्रथम 'तप' द्वितीय 'योग ।' तप का तात्पर्य है–दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन और योग का तात्पर्य है–सत्प्रवृत्तियों का संवर्धन । चिन्तन में उत्कृष्टता, चरित्र में आदर्शवादिता और व्यवहार में शालीनता का समावेश जो जितनी मात्रा में कर सका, समझना चाहिये कि वह उसी स्तर की प्रगति आत्मोत्कर्ष में कर सका ।

कपड़े को रंगने में पहले उसे धोना पड़ता है । खेत में बीज बोने से पहले उसे जोतना पड़ता है । दीवार खड़ी करने से पहले नींव खोदनी पड़ती है । देवता की स्थापना-पूजा करने से पहले स्थान एवं उपकरणों को शुद्ध करना पड़ता है । तप परिमार्जन के लिये, योग परिष्कार के लिये होता है । जो इन दोनों प्रसंगों में अपने आपको सही सिद्ध कर लेता है, समझना चाहिये कि उसने उतना ही अपना पथ-प्रशस्त कर लिया, परमलक्ष्य तक पहुँचने की उसकी तैयारी उसी मात्रा में पूरी हो गयी ।

माता बच्चे को प्राणों से अधिक प्यार करती है । उसकी सेवा सहायता में भी निरन्तर लगी रहती है, किन्तु जब वह कपड़ों में टट्टी कर लेता और अपने आपको उस गन्दगी में पूरी तरह सान लेता है, तो उसके आग्रह करने, मचलने पर भी माता न तो गोदी में लेती है, और न दूध पिलाती है । उसका प्रथम प्रयास होता है-बच्चे को धोना, नहलाना, कपड़े बदलना । इतने कार्यों से जब शुद्धता पूर्ण हो जाती है, तभी वह उसे गोदी में उठाती, दूध पिलाती और खिलाती है । ईश्वर की रीति-नीति भी यही है । वह तब तक मनुष्य से खिंचा-खिंचा, असंबद्ध रहता है, जब तक कि आत्म-परिष्कार का प्रयोजन पूरा नहीं हो जाता है । इस संदर्भ में बरती गयी उपेक्षा ही वह स्थिति है, जिसके कारण उसे ईश्वर के विशिष्ट अनुदान प्राप्त करने में कठिनाई पड़ती है । आत्मशोधन ही वह कार्य है, जिसे सर्व प्रथम किया जाता है और उसके बाद आत्मिक प्रगति का, परिष्कार का क्रम तेजी से चल पड़ता है ।

परीक्षा-प्रतिस्पर्द्धा की कसौटी पर जो खरे उतरते हैं, उन्हें उत्तीर्ण किया जाता है । ऊँची श्रेणी हो, तो पुरस्कार भी दिया जाता है । किन्हीं ऊँचे पदों पर नियुक्ति होती है, तो भी आवेदनकर्त्ताओं को प्रतियोगिता में बिठाया जाता है । जो उपयुक्त सिद्ध होते हैं, उन्हें नियुक्ति पत्र दिया जाता है । इसके उपरान्त भी कार्य कुशलता की समीक्षा होती रहती है और पदोन्नति का सुयोग बनता रहता है । यह कार्य बिना किसी पक्षपात के चलने का

नियम है । लोकाचार में इसका व्यतिक्रम भी हो सकता है, पर ईश्वर के दरबार में यह अकाट्य अनुबन्ध है । इसलिये ईश्वर की मनुहार करने की अपेक्षा यही उत्तम है कि अपनी पात्रता–उत्कृष्टता बढ़ाने के प्राणपण से प्रयत्न करें । आग पर तपाये जाने और कसौटी पर कसे जाने पर भी बार–बार खरे सोने की तरह अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करते रहें । इसी आधार पर संसार में तथा परमात्मा के दरबार में किसी का मूल्यांकन होता है । इसी आधार पर किसी को दैवी अनुग्रह का अनुदान मिलता है । विभूतियाँ, ऋद्धियाँ, सिद्धियाँ हस्तगत होने का यह एक सुनिश्चित राजमार्ग है । पगडण्डियों में भटकने वाले व्यर्थ ही भटकाव में पड़ते और अपने आपको कटीले जाल–जंजाल में फँसाते हैं । उन्हें थकान, खीझ और निराशा ही हाथ लगती है ।

संसार में कितने ही अन्धविश्वास फैले हुए हैं । लड़की–लड़के के बीच भेद–भाव करने के पीछे कोई तर्क नहीं है । जातिगत ऊँच–'नीच की मान्यता को भी सिद्ध नहीं किया जा सकता । नशेबाजी से किसका क्या भला हुआ है ? शकुन–मुहूर्तों की मान्यता कितने शंका–संदेहों में उलझाती है । फिर भी लोग उन्हें मुद्दतों से मानते चले आ रहे हैं । बौद्धिक भ्रान्तियों का पसारा भी कम नहीं है । उसने आधी दुनियाँ के चिन्तन को भ्रमित कर रखा है ।

इसी प्रकार का एक भ्रम यह है कि ईश्वर को नाम रटने और पूजा पाठ से अपने वशवर्ती किया जा सकता है और उससे उचित अनुचित मनोकामनाओं को पूरा कराया जा सकता है । यह ईश्वर की शान में बहुत बड़े आक्षेप का आरोपण करना है, उसकी विवेक बुद्धि को न्यायशीलता को कलंकित करना है । चारणों के मुँह प्रशंसा सुनकर जिस प्रकार मध्यकालीन सामन्त फूल कर कुप्पा हो जाते थे और उस यशगान के बदले उन्हें बहुमूल्य उपहार प्रदान किया करते थे । इसी स्तर का भगवान को मानें, उसे चापलूसी चमचागीरी के आधार पर फुसलाने का प्रयत्न करें, तो समझना चाहिये कि ईश्वर की महानता को समझने में हम समर्थ

नहीं हुए । भोग प्रसाद की, वस्त्र-छत्र चढ़ाने की रिश्वत देकर यदि हम उसके प्रिय पात्र बनना चाहते हैं, और मनमर्जी से उचित-अनुचित काम कराना चाहते हैं, तो उसे घृष्टता ही कहा जायेगा । इन ओछे हथकण्डों से हम किसी बैंक मैनेजर से मनचाही राशि प्राप्त नहीं कर सकते, परीक्षक से भ्रष्ट कार्य नहीं करा सकते, न्यायाधीश को नहीं बरगला सकते और बिना योग्यता के किसी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होने का दॉव चलाने में सफल नहीं हो सकते, तो फिर ईश्वर से उस प्रकार का ओछापन अपनाने की अपेक्षा किस आधार पर की जाय ? वह इतना सूझबूझ रहित नहीं है, जिसे भजनानंदी लोग मछली या चिड़िया की तरह प्रलोभन देकर जाल में फँसा सकें और उससे अनुचित लाभ उठा सकें ।

साधना-उपासना का एकमात्र प्रयोजन आत्मशोधन और आत्मपरिष्कार है । एक शब्द में पात्रता अभिवर्धन है । कहा जा चुका है कि दुष्प्रवृत्तियों का निष्कासन 'तप' और सद्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन 'योग' है । इन आधारों को जो जितनी दृढ़ता और तत्परता के साथ अपनाता है, वह अपनी पात्रता बढ़ाते हुए परमेश्वर का प्राणप्रिय बनता है । चतुरता भरे हथकण्डों को भक्ति का नाम देकर उनके सहारे न ईश्वर का प्रियपात्र बन सकता है और न उसके अनुग्रह से मिलने वाली विभूतियों का अधिकारी ।

जप, ध्यान, पूजा, उपचार, कीर्तन, कर्मकाण्ड आदि का उद्देश्य यह है कि इन माध्यमों को अपनाकर हम अपनी श्रेष्ठता और उदारता को अधिकाधिक विस्तृत और परिपक्व करें । इन उपचारों का रहस्य, संकेत समझते हुए उन कार्यों को करें, जो नियन्ता को अभीष्ट हैं ।

मनुष्य जन्म को सुर दुर्लभ कहा गया है । स्रष्टा की यह सर्वोपरि कलाकृति है । इसे जीव के हाथों इस आशा अपेक्षा के साथ धरोहर के रूप मे सौंपा गया है कि निजी अपूर्णताओं को पूर्णता में विकसित किया जाय और साथ ही विश्व उद्यान को अधिकाधिक समुन्नत, सुविकसित बनाने की सेवा-साधना में निरत

रहा जाय । इस दूरदर्शी विवेकशीलता को व्यावहारिक जीवन में उतारने पर ही कोई सच्चे अर्थों में भक्त या साधक बन सकता है । संयम साधना से पुण्य सधता है और सेवा–साधना में निरत रहकर परमार्थ अर्जित किया जा सकता है । यह दोनों ही मिलकर उस आवश्यकता की पूर्ति करते हैं, जिससे जीवन सार्थक बनाने वाली गौरव–गरिमा हस्तगत होती है ।

यदि अध्यात्म क्षेत्र में घुसे हुए भ्रम जंजाल से निकल कर उसके वास्तविक स्वरूप और क्रियान्वयन को समझा जा सके, तो उसका प्रतिफल निश्चित रूप से वही हो सकता है, जो शास्त्रकारों ने लिखा और आप्त पुरुषों ने कहा है । विज्ञान का पहला सिद्धान्त है कि किसी बात को सही तब माना जाय, जब प्रतिपादन के अनुरूप उसका प्रतिफल भी उपलब्ध हो सके । प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने की बात सभी के गले उतरती है, इसलिये भौतिक विज्ञान ने मान्यता प्राप्त कर ली । अध्यात्म विज्ञान इस दृष्टि से पिछड़ा, फलतः अवज्ञा और उपेक्षा का भाजन बनने लगा है ।

प्रत्यक्षवाद की कसौटी पर

अध्यात्म क्षेत्र में प्रयत्न और प्रयास करने वालों में से अधिकांश को यह कहते सुना है कि इतने दिन पूजा–पाठ करने पर भी कोई कहने लायक उपलब्धि हस्तगत नहीं हुई । समय बेकार गया और निराशा हाथ लगी ।

बड़ी आशायें बाँधते और उसके लिये आवश्यक साधन जुटाने पर प्रयास आधे–अधूरे, काने–कुबड़े ही रहते हैं और उनका प्रतिफल वैसा नहीं होता जैसा कि होना चाहिये । क्रिया पद्धति में अथवा योजना बनाने की विधि–व्यवस्था में खोट रहे तो भी अभीष्ट प्रतिफल से वंचित रहना पड़ता है । बहुत ऊपर चढ़कर गिरने से करारी चोट लगती है । माहात्म्यों को सुनकर बड़ी आशायें बाँधने और उस संदर्भ में कुछ हाथ न लगने पर भी यही हाल होता है ।

लोग ईश्वर के दर्शन की आशा करते हैं और बढ़ी-चढ़ी महत्वाकांक्षाओं को दैवी अनुग्रह से तुर्त-फुर्त पूरी हो जाने की आशा करते हैं । इसके लिये कुछ पूजा पत्री भी करते हैं, पर इच्छित प्रतिफल जब नहीं मिलता तो उस समय अपनी गलती ढूँढ़ने का तो किसी का मन होता नहीं, सिद्धान्तों के क्रिया-कलापों की त्रुटि ढूँढ़ने की भी इच्छा नहीं होती, वरन् होता यह है कि मूल सिद्धान्त को ही गलत या ढोंग मानने का मन करता है । प्रतिपक्ष में कोई उत्तर देने वाला न हो तो फिर किसी पर भी कुछ भी दोषारोपण करने की छूट रहती है । बेचारा अध्यात्म ही अपने ऊपर सारे दोष लाद लेने जैसी असहाय स्थिति में होता है ।

परिणाम यह होता गया कि बुद्धिजीवी उस सिद्धान्त को ही गलत ठहराने लगे । भौतिक विज्ञान ने अपने बचपन और अल्हड़पन के आरंभिक दिनों में जोर शोर से यह कहा था कि ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं । प्रकृति का स्वसंचालित चक्र ही अपना सारा क्रम चला रहा है । इसी प्रकार आत्मा के अस्तित्व को भी झुठलाया गया । कहा गया कि मनुष्य चलता-फिरता पेड़ मात्र है । समय आने पर वह सूख जाता है और समाप्त हो जाता है । परलोक नाम की कोई वस्तु नहीं । समर्थ, असमर्थों का शोषण करते रहते हैं ताकि दुनिया में असमर्थता की कुरूपता बढ़ने न पाये । जब चेतना की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं, मात्र मस्तिष्कीय हलचलें ही शरीर के अंग-अवयवों की तरह काम करती हैं । इसी दशा में चेतना विज्ञान का, अध्यात्म तत्व ज्ञान का कोई अस्तित्व ही नहीं रह जाता । फिर उससे किसी प्रकार के अविज्ञात प्रतिफलों की आशा रखना ही व्यर्थ है ।

भौतिकवाद ने अपने बचपन में तोतली वाणी से जो कुछ कहा था उसे अपरिपक्व लोगों ने बिना अध्ययन अन्वेषण किये यथावत् सही मान लिया और वास्तविक बन बैठे । नया मुल्ला जोर की आवाज लगाता है इसी प्रकार तथाकथित बुद्धिजीवियों ने नास्तिकता

का पक्ष और भी जोर–शोर से अलापना आरंभ कर दिया ।

दूसरा पक्ष तत्वज्ञानी दार्शनिकों का था उन्होंने तर्क, तथ्य, प्रमाण उदाहरण की आवश्यकता समझी ही नहीं । शास्त्र वचन को ही सब कुछ मानते रहे । 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' के अतिरिक्त उन्हें कुछ सूझा ही नहीं । इसी कारण वे अपनी बातें शास्त्रों या किम्बदन्तियों के आधार पर प्रस्तुत करते रहे । उनसे भी यह न बन पड़ा कि बदलते युग में बुद्धिवाद को प्रत्यक्षवाद को प्रश्रय मिला है । हमें उसी के अनुरूप नास्तिकवाद के विरुद्ध रणनीति बनानी चाहिये । तर्क से तर्क को, तथ्य से तथ्य को, प्रमाण से प्रमाण को और उदाहरण से उदाहरण को काटना चाहिये । अध्यात्मवादियों को भौतिकवाद के सिद्धान्तों का अता–पता नहीं था । विज्ञान उनने पढ़ा नहीं था । इसलिये एक गूँगा और दूसरा बहरा जैसा स्थिति बन गयी । विज्ञान ने अध्यात्म की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न नहीं किया और अध्यात्म को विज्ञान का दर्शन समझने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई, फुरसत नहीं मिली । फल यह हुआ कि अध्यात्म को विज्ञान के सम्मुख भी परास्त होना पड़ा । नीत्से, मार्क्स, रसैल जैसे नास्तिकवादी दार्शनिकों के कथन को समुचित ख्याति मिली और अध्यात्म की प्रखरता को धूमिल करने वाला दूसरा आधार खड़ा हो गया ।

तीसरे पक्ष के बारे में पहले ही कहा जा चुका है कि वे ईश्वर को फुसलाने और उससे उल्लू सीधा करने की बात सोचते थे सो बनती नहीं थी । प्रत्यक्ष दर्शन करके उसकी लंगोटी उतारना चाहते थे, पर सर्वव्यापी शक्ति तो निराधार ही रह सकती है, वह साकार कैसे बने ? मनुष्यों की तरह किसी से वार्तालाप या व्यवहार कैसे करे ? पर किम्वदन्तियाँ उनका साहस बढ़ाती रहीं और आशा लगाये रहे कि ईश्वर का दर्शन होने पर उसे पकड़कर बैठना और अपना काम करा लेना सरल पड़ेगा । पर वह बात भी बनी नहीं । मनोकामना पूर्ण हुई नहीं । चमत्कारी ऋद्धियाँ–सिद्धियाँ प्राप्त करके लोगों को कौतूहल में डालना और उनकी श्रद्धा का दोहन भी ऐसा जटिल काम था, जिसे जादूगर

स्तर के लोग ही अपनी चतुरता के बल पर प्रदर्शित करते थे । इन दिनों मात्र ऐसे बाजीगर ही तथाकथित सिद्ध पुरुषों के नाम से प्रख्यात हैं । पोल खुलने से पहले ही दुकान एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह जमा लेते हैं ।

उपरोक्त तीनों आधार अध्यात्म के प्रति जन साधारण की विशेषतया बुद्धिजीवियों की श्रद्धा को डगमगाते हैं । उन्हें इन बातों से बचने बचाने के लिये उत्तेजित करते हैं । अब मात्र परम्परावादियों, अन्धविश्वासियों और धर्मभीरुओं का एक वर्ग ही ऐसा बचा है जिसके सहारे इस क्षेत्र का ढांचा बिडम्बना के रूप में किसी तरह खड़ा है और जहाँ–तहाँ धर्म सम्प्रदाय के नाम पर अध्यात्म की औंधी–सीधी गतिविधियाँ चल रही हैं ।

स्थिति का पर्यवेक्षण करने से लगता है कि अध्यात्म का पक्ष दिन–दिन दुर्बल होता जायेगा । उसका साथ समझदारी छोड़ती जायेगी । अन्धविश्वासों के आधार पर कोई आधार देर तक खड़ा नहीं रह सकता, वह कल नहीं तो परसों अपना दम तोड़ देगा । बालू की दीवार कब तक खड़ी रहेगी ? जादूगर लोग कब तक अपना व्यवसाय चलाने के लिये धर्म भीरु लोगों का दोहन करते रहेंगे ? पूरी स्थिति को एक दृष्टि से देखने पर भविष्य अन्धकारमय दीखता है ।

एक आशा की किरण क्षितिज से नये रूप में चमकी है । उसने आश्वासन दिया है कि सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है । वह मरता नहीं । समस्त संसार विपरीत पड़ जाय तो भी वह अपने पैरों अकेला खड़ा रह सकता है । चेतना मिथ्या नहीं हो सकती । जब जड़ पदार्थों की उलट–पुलट से सामर्थ्य के भण्डार और सुविधाओं के अम्बार खड़े किये जा सकते हैं तो चेतना का अवलम्बन सर्वथा निरर्थक सिद्ध हो ऐसा नहीं हो सकता । आत्मा की सामर्थ्य इतनी तुच्छ नहीं जिसे कुछ अपरिपक्वों या उतावलों के हो–हल्ले में विस्मृत तिरस्कृत किया जा सके ।

अध्यात्म के शाश्वत सिद्धान्तों को श्रद्धा के आधार पर पुरातन काल में प्रतिपादित किया जाता रहा था । तब तक सारी व्यवस्था

अपने ढंग से क्रमबद्ध रूप से चल रही थी । पर समय ने पलटा खाया तो बुद्धिवाद, प्रत्यक्षवाद और पदार्थ विज्ञान को विचारशील वर्ग ने मान्यता दी । ऐसी दशा में यह आवश्यक था कि श्रद्धा आधार को प्रत्यक्ष की कसौटी पर भी खरा सिद्ध किया जाय । समय की मांग थी कि अध्यात्म को यदि जीवन्त और सम्मानित बनाये रहना है, तो उसे प्रत्यक्षवाद की अग्नि परीक्षा में उसी पवित्रता से गुजरना होगा जिस प्रकार लंका से लौटने पर सीता ने अपनी पवित्रता सिद्ध करने के लिये अग्नि में प्रवेश किया था ।

इस दिशा में छुटपुट कथन और प्रयास तो कितने ही मंचों से होते रहे हैं, पर कोई कार्यक्रम नहीं बना जिसे सर्वांगपूर्ण कहा जा सके । सन्त विनोबा ने एक बार कहा कि अध्यात्म और विज्ञान का एकत्रीकरण होना चाहिये, पर यह कैसे हो ? कौन करे ? इसकी बारीकी में वे भी न जा सके । संसार के और भी कितने मनीषी इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये कहते और लिखते रहे हैं । पर उनका चिन्तन भी एक कदम आगे बढ़कर यह न समझा सका कि इस कार्य की रूपरेखा क्या हो सकती है ?

सृष्टा की संतुलन शक्ति ने समय की माँग को पूरा करने के लिये एक कठपुतली खड़ी की है और उसका सूत्र संचालन करने वाले तार अपने हाथ में रखे हैं । ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान युग की इस महती आवश्यकता को पूरा करने के लिये तत्परता से लगा और एक-एक करके अनेकों कदम सफलता की दिशा में तेजी के साथ उठा रहा है । उसका संकल्प है-मान्यता प्राप्त पदार्थ विज्ञान के सिद्धान्तों से तालमेल बिठाते हुए अध्यात्म के शाश्वत सिद्धान्तों को खरा सिद्ध करना । समझा जाता था कि दोनों दिशायें एक-दूसरे से भिन्न है । एक प्रत्यक्ष को सब कुछ मानता है दूसरा परोक्ष को । एक को इन्द्रियों या उपकरणों के सहारे प्रकट रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, पर चेतना तो सूक्ष्म है और उसका प्रभाव अनुभूतियों से सम्बन्धित है । ऐसी दशा में प्रतिकूल को अनुकूल कैसे बनाया जाय ? पर आशंकायें निर्मूल सिद्ध हुई और वह व्यवस्था बन गयी, वह राह मिल गयी जिनके

सहारे अगले दिनों नास्तिकों को ही सर्वप्रथम कट्टर आस्तिक बनाया जा सकेगा । भौतिक विज्ञान तथ्यों पर आधारित है, जब तथ्य अध्यात्म का पक्ष प्रस्तुत करेंगे, तो ईमानदारी के नाते उसे वह भी स्वीकार करना पड़ेगा, जिसका उसने पिछले दिनों खण्डन किया है । विज्ञान दुराग्रही नहीं होता । न्यूटन ने जो सोचा और कहा था आज की मान्यतायें उसके प्रतिकूल हैं । फिर भी हठवादिता ने कोई अड़चन नहीं डाली । सम्प्रदायवाद की तरह उस मंच से यह नहीं कहा गया कि "हम सही और सब गलत" । हमारा सो सत्य न कहकर बुद्धिमत्ता सदा यह कहती रही है कि जो सच सो हमारा । इस आधार पर उस क्षेत्र के भूल सुधार का क्रम चलता रहा है और यथार्थता को अधिक आगे तक खोज निकालने का प्रयास होता रहेगा ।

ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान ने अध्यात्म को विज्ञान की कसौटी पर खरा सिद्ध करने के लिये अनेकों पर्यवेक्षण प्रयोगशाला में तथा बौद्धिक अनुसंधान के माध्यम से किये हैं । उन्हें पिछले दिनों अखण्ड ज्योति के तथा युग शक्ति गायत्री पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकट किया जाता रहा है । ग्रन्थ माला भी चल रही है । आरम्भिक कार्य बन पड़ने पर अगले दिनों और भी ठोस एवं व्यापक कार्य बन पड़ने की आशा और भी अधिक बलवती हो उठी है । एक बुलेटिन भी प्रकाशित करने योजना है ।

इसके अतिरिक्त एक आवश्यकता यह भी थी कि प्रतिपादनों प्रयोगों को व्यक्तियों पर प्रयुक्त करके दिखाया जाय । औषधियों के आविष्कार होते हैं, तो उनमें डाले रसायनों की प्रशंसा करने भर से मान्यता नहीं मिल जाती, किन्तु पहले छोटे जीवों पर फिर मनुष्यों पर उसके प्रयोग का प्रभाव सिद्ध करना पड़ता है । तभी वह आविष्कार मान्यता प्राप्त करता है । समाधान होने पर ही किसी बात को हृदयंगम करने की प्रवृत्ति इन दिनों चल रही है । उसकी उपेक्षा भी तो नहीं की जा सकती ।

व्यक्ति पर प्रयोग करने में एक बड़ी कठिनाई यह है कि अध्यात्म के मूल एवं प्रारम्भिक सिद्धान्त—जीवन का कायाकल्प स्तर

का समग्र परिशोधन अपनाने के लिये इस क्षेत्र के लोग तैयार नहीं । मात्र विधि उपचार भर करना चाहते हैं । आत्म परिष्कार का मोर्चा अति कठिन है । फिर उपलब्धियों का प्रयोग संकीर्ण स्वार्थपरता के लिये न करके विश्व मानव के लिये, परमार्थ के लिये करने की शर्त और भी अधिक कठिन है । लोग सरलता चाहते हैं । लाटरी में एक रुपया लगाकर एक लाख का इनाम पाना चाहते हैं ।

इस माहौल में सस्ते दाम में बहुमूल्य खरीदने की ललक कैसे पूरी हो ? लकड़ी की बनी तलवार युद्ध मोर्चे से विजय का सेहरा सिर बाँधे कैसे लौटे ? मात्र जंत्र-मंत्र, पूजा-पत्री की बाल क्रीड़ा जैसी सरल प्रक्रिया किस प्रकार फलवती हो और यशस्वी लोगों के समकक्ष कैसे टिक सके ? इस कठिनाई का भी हल निकाल लिया गया है और कोटि-कोटि जन समुदाय को अध्यात्म की प्रत्यक्षवादिता सिद्ध करने का भी दायित्व ओढ़ा और निभाया गया है । कार्य जो हाथ में लिया जाय समग्र और प्रामाणिक होने पर ही उसकी प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा है ।

समग्र जीवन को अध्यात्म से ओतप्रोत करें

ईश्वर के स्वभाव, स्वरूप एवं विधान के संबंध में जितनी भ्रान्तियाँ लोगों में हैं, उससे भी अधिक साधक के स्तर एवं साधना विधान, समय और मार्गदर्शक जैसे संबंधित प्रसंगों में भी हैं ।

उपनिषदों ने निराकार ब्रह्म का स्थान हृदय गुफा और स्वरूप अंगुष्ठ मात्र ज्योति वाले आकार का लिखा है । यह ध्यान और भावना का विषय है । अन्तर्मुखी होकर ध्यान मग्न स्थिति में इस प्रकार की भावना परिपक्व की जाती रहे, तो आत्म साक्षात्कार की विधा चल पड़ती है । अंतरंग में ही ईश्वर का निवास है और उसके घर-शरीर को देवालय जैसा पवित्र बना कर रखा जाय, आत्म निर्भर रहा जाय, आत्म परिष्कार में जुटा जाय, यह ईश्वर

दर्शन का निराकार मार्ग है ।

साकार दर्शन का आग्रह अर्जुन को, यशोदा को, कौशिल्या को, काकभुसुण्डि आदि को था । इन सभी को भगवान ने अपना प्रत्यक्ष शरीर विराट् विश्व के रूप में अनुभव कराया और उसकी साधना के लिये लोकमंगल के परमार्थ कार्यों में सत्प्रवृत्ति संवर्धन की सेवा साधना में निरत होने के रूप में समझाया ।

साधनात्मक कर्मकाण्डों का उद्देश्य भी वही है कि उन माध्यमों को अपनाकर आत्मचेतना को श्रेष्ठ समुन्नत बनाया जाय । ईश्वर स्मरण के निमित्त किये गये जप ध्यान का उद्देश्य है कि जीवन देने वाले को, उसकी आकांक्षा को, धरोहर को ध्यान में रखते हुए जीवनचर्या की उदात्त योजना बनाई जाय । चंदन के माध्यम से वातावरण को सुविकसित करने का, अक्षत के माध्यम से अंशदान का, दीप के माध्यम से सद्ज्ञान का आलोक हृदयंगम कराने एवं सुविकसित जैसे कार्यों की प्रेरणा ग्रहण करने का निर्धारण है । यह समग्र शालीनता ही ईश्वर की प्रसन्नता का केन्द्र बिन्दु है ।

साधना में श्रद्धा प्रमुख है । श्रद्धा और विश्वास को भवानी शंकर बताते हुए रामायण में कहा गया है कि इन दोनों का प्रथम आश्रय लेना पड़ता है । इसके उपरान्त ही परम सिद्धि का आधार बनता है । मीरा के गिरधर गोपाल, रामकृष्ण परमहंस की काली, एकलव्य के मृत्तिका विनिर्मित द्रोणाचार्य इसके प्रमाण हैं कि श्रद्धा का आरोपण करके कोई भी माध्यम सिद्धि प्रदान करने के आधार बन सकते हैं । पत्थर के खिलौने को इस श्रद्धा के आधार पर ही देव रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है । श्रद्धा के अभाव में तो वह खिलौना मात्र बन कर रह जाता है । यही बात मंत्र के सम्बन्ध में भी है, विश्वास हो तो मंत्र अन्यथा अक्षरों की रटन्त । देवता में, मंत्र में जो सामर्थ्य प्रकट होती है, वह वस्तुतः साधक की श्रद्धा ही महान बनकर प्रकट होती है । ईश्वर हमारी ही प्रतिच्छाया और प्रतिध्वनि है । यह ठीक है कि ईश्वर ने मनुष्य को बनाया था, यह भी गलत नहीं है कि उसे मनुष्य की श्रद्धा ने

ही अपने साँचे में ढाला है । अन्य जीव–जन्तुओं में से तो किसी को ईश्वर का भान अनुभव होता ही नहीं ।

धनुष की प्रत्यंचा कड़ी और सही होने पर ही तीर की दूरी और चोट प्रभावी होती है । अन्यथा बेचारे तीर को चुभाने पर तो छोटा–सा गड्ढा ही हो सकता है । साधक का व्यक्तित्व ही साधना को सशक्त बनाता है । वह घटिया और ओछा हो तो शब्दों की रटन्त भर से क्या कुछ बनने वाला है । वाल्मीकि उल्टा नाम जपने से भी सिद्ध पुरुष हो गये थे और राम के घर में निवास करने वाली कैकेयी, मंथरा आदि को अपयश ही हाथ लगा था । 'राम से बड़ा राम का नाम' बताने वाली उक्ति सही है । राजकुमार राम तो अपने सम्पर्क वालों को ही प्रभावित करते थे, पर राम नाम तो अभी भी लोगो को तारता है । गाँधीजी जैसों का इष्ट बनता है । कारण कि उसके साथ श्रद्धा जुड़ी होती है । जो मिट्टी के ढेले को भी पूजा प्रयोजनों में देवाधिदेव गणेश बना देती है ।

गुरु के अनुग्रह या मार्गदर्शन की बात को सर्वत्र बहुत महत्व दिया गया है । कभी–कभी तो उसे गोविन्द से भी बढ़कर बताया जाता है । इसकी तलाश में बहुत लोग रहते हैं और इस फिराक में रहते हैं कि कोई सिद्ध पुरुष मिले तो हमें पार लगावे, पर वे यह भूल जाते हैं कि नदी की सतह पर लकड़ी की नाव ही चल सकती है, पत्थर का टुकड़ा तो उसमें डालते ही डूब जाता है । स्मरण रहे कि इस दुनियाँ में सुयोग्यों की, दाताओं की कमी नहीं, वे प्यासे से फिरते हैं कि कौन सत्पात्र मिले और किसे अपनी परम्परा सौंप कर देव ऋण से उऋण हों, किन्तु सत्पात्र न मिलने पर दुरुपयोग के लिये कोई अपनी परिश्रम की कमाई कुपात्र के हाथों किस लिये सौंपेगे ? उस अनुग्रह से तो उसमें अहंकार और विनाश कृत्य ही बढ़ेगा । रावण, कुम्भकरण, मारीच, हिरण्यकश्यपु, वृत्तासुर, भस्मासुर, महिसासुर आदि असुर कठिन साधना करके ऊँचे वरदान पाने में सफल हो गये, पर उस उपलब्धि से उनका कुछ बना नहीं । बिपड़ा ही है ।

कन्या का पिता अपनी सुयोग्य लाड़ली बेटी के सयानी हो जाने पर कोई तदनुरूप सुयोग्य लड़का ढूँढ़ने के लिये दूर-दूर तक खोज बीन करता है । मिल जाने पर अपने भाग्य को सराहता है, पर यदि कोई कुपात्र लड़की के पिता से प्रार्थना करे कि इस लड़की को हमें दे दें तो उसे दुत्कार ही पड़ेगी । सिद्ध पुरुष इतने मूर्ख नहीं होते कि किसी स्वार्थी और ओछे आदमी की वस्तुस्थिति न परख सकें और ऐसे ही अपनी गाढ़ी कमाई तप साधना चापलूसी मात्र के बदले लुटा दें ।

आत्मा की प्रगति क्रमिक गति से होती है । उसमें समय लगता है और धैर्य रखना पड़ता है । चौरासी लाख योनियों के कुसंस्कारों का परिशोधन करने के लिये कुछ जन्म लगें तो इसमें अधीर नहीं होना चाहिये । पानी के बबूले की तरह फूलना और झाग की तरह बैठ जाना जैसी उक्ति चरितार्थ नहीं करनी चाहिये । शिव के सहस्र वर्ष की समाधि लगा लेने पर पार्वती ने अपना निश्चय बदला नहीं था । परीक्षा के लिये सातों ऋषियों को एक ही उत्तर दिया था-"कोटि जनम लगि रगर हमारी । वरउँ शंभु न त रहहुँ कुमारी ।" धैर्य संकल्प और साहस ही साधक की निधि है, जिसके पास वह है उसका देर-सबेर में लक्ष्य प्राप्त करना सुनिश्चित ही है । उतावले ही अधीर होते, निराशा व्यक्त करते और अपनाया हुआ मार्ग छोड़ते हैं । इन सभी तथ्यों को हृदयंगम कर लेना हर सच्चे साधक के लिये आवश्यक है ।

दैवी शक्तियाँ और सिद्धियाँ मिलती तो हैं, पर उनके साथ एक शर्त जुड़ी होती है कि उनका उपयोग लोभ, मोह या अहंकार की पूर्ति के लिये न किया जाय वरन् पूरी तरह मात्र परमार्थ के लिये, सत्प्रवृत्तियों के संवर्धन के लिये ही खर्च किया जाय । तृष्णा, लिप्सा की पूर्ति के लिये यदि कुछ आवश्यक है तो वह अपने श्रम, बुद्धिबल या कौशल से कमाया जाना चाहिये । सन्तों का तप या देवताओं का अनुग्रह उनके लिये सुरक्षित रखा जाना चाहिये, जो विश्व वाटिका को सींचने, समुन्नत करने में संलग्न हैं । उनका हक वे लोग क्यों हड़पें, जो अपनी ही सुविधा,

सम्पन्नता के लिये उन्हें भक्त–शिष्य का ढोंग बनाकर हथियाना चाहते हैं ।

साधना का स्वरूप है जीवन की सर्वतोमुखी उत्कृष्टता । उसके ही स्वरूप में अपने व्यक्तित्व का अनुकरणीय, अभिवन्दनीय और प्रेरणाप्रद बनना । दूसरा यह कि विश्व वाटिका को समुन्नत बनाने में अपने श्रम, समय तथा साधनों का उदारतापूर्वक समर्पण करना । जो इस राजमार्ग पर चलते हैं, उन्हें हाथों–हाथ उसका प्रतिफल मिलता है । आत्म–संतोष, लोक सम्मान एवं सहयोग के साथ ही दैवी अनुग्रह की अदृश्य लोकों से अनुदान वर्षा । इतना पाकर कोई भी कृत–कृत्य हो सकता है । संग्रही विलासी और अहंकारी तो एक प्रकार के उन्मादी होते हैं । उनकी खुमारी बढ़ाने और दुर्गति कराने के लिये उच्चस्तरीय शक्तियाँ अपने अनुदान को वरदान के रूप में देती नहीं । गिरते के गले पत्थर बाँधने की कृपा कोई क्यों करे ? जिससे उसका पतन और भी सुनिश्चित हो जाय । यही हैं वे मोटे सिद्धान्त जिन्हें अध्यात्म साधना क्षेत्र में प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को कुछ निश्चय करने के पूर्व ही समझ लेना चाहिये ।

अध्यात्म प्रवृत्तियाँ अपनाने पर संसार को भव–बन्धन माया मिथ्या बताने जैसे दोषारोपण की आवश्यकता नहीं है । न इधर–उधर भटकने तथा भिक्षा पर निर्वाह करने की । अपने युग के आदर्श सन्तों में गाँधी–विनोबा की नीति सर्वोपरि है । सामान्य वेष–भूषा में रहते हुए सादा जीवन उच्च विचार की नीति को पाला जाय इतना ही पर्याप्त है । मन को लोभ, मोह, अहंकार की कुत्साओं में न भटकने दिया जाय तो छोटे परिवार के उत्तरदायित्वों का निर्वाह कुछ भी कठिन नहीं पड़ता । परिजनों को स्वावलम्बी सुसंस्कारी बनाया जाय, तो उनके लिये उत्तराधिकार में प्रचुर सम्पदा छोड़ मरने की जरूरत नहीं है । तारतम्य ऐसा बिठाना चाहिये कि आधी आयु पारिवारिक आजीविका सम्बन्धी कार्यों में लग कर शेष आधा जीवन वानप्रस्थ स्तर के परमार्थ कार्यों के लिये सुरक्षित रखा जाना चाहिये । आज की

परिस्थितियों में सर्वोपरि महत्व एवं प्राथमिकता देने योग्य एक ही परमार्थ है—जनमानस का परिष्कार । इसी के निमित्त जन सम्पर्क साधा और घर—घर अलख जगाना चाहिये ।

प्रत्येक अध्यात्म प्रेमी को अपने जीवन का स्वरूप ब्राह्मण साधु जैसा बनाना चाहिये । इन्हीं परम्पराओं के जीवंत रहने के कारण व्यक्तित्ववान लोकसेवियों का बड़ा समुदाय उद्भूत होता रहता था और उनके द्वारा देश की ही नहीं समस्त संसार की भावनात्मक संरचना बन पड़ती थी । इन्हीं सेवा साधनाओं के फलस्वरूप भारत जगद्गुरु बना था और उसके अजस्र अनुदानों को विश्व के हर क्षेत्र में भूरि—भूरि सराहा गया था । देव मानवों की उत्पत्ति साधु—ब्राह्मण परम्परा द्वारा ही संभव हुई थी । इसी खदान में से बहुमूल्य रत्न निकलते रहे थे । आज ब्राह्मण वंश और साधु वेष भर जीवित रह गया है । उसकी विशिष्टतायें और वरिष्ठतायें एक प्रकार से तिरोहित ही हो गयी हैं । इस कारण न केवल देश वरन् समूचा समाज विश्व चिन्तन और चरित्र की दृष्टि से गया—गुजरा बन गया । वातावरण में दुष्प्रवृत्तियाँ भरीं तो अनेकानेक समस्यायें उलझीं और विपत्तियाँ टूटीं । इसे संभालने के लिये फिर सतयुग की वापसी आवश्यक है । यह कार्य साधु—ब्राह्मणों की नई फसल नये सिरे से उगाने से होगा । इसकी पूर्ति युग अध्यात्म को ही करनी है और उसका शुभारंभ प्रत्येक भावनाशील अध्यात्मवादी को अपने से ही प्रारंभ करना होगा ।

जीवन को अध्यात्ममय बनाने के लिये आधा जीवन ब्राह्मण के रूप में और उत्तरार्द्ध साधु के रूप में व्यतीत करना चाहिये । घर में गुञ्जायश न होने पर रोज कुआ खोदने रोज पानी पीने जैसी स्थिति बन सकती है, तब सात घण्टा सोने के लिये पाँच घण्टा नित्य कर्म हाट बाजार जैसे कामों के लिये और आठ घण्टे कमाने के लिये यदि योजनाबद्ध रूप से लगाये जायें, तो बीस घण्टे में स्वार्थ प्रयोजन सधते रह सकते हैं और चार घण्टे परमार्थ प्रयोजन के लिये मिल सकते हैं । इसमें से एक घण्टा नित्य प्रज्ञायोग की साधना के लिये और शेष तीन घण्टे जन सम्पर्क

द्वारा लोक मानस परिष्कार के निमित्त लगाये जा सकते हैं । इस प्रकार जीवन का पूर्वार्द्ध ब्राह्मण स्तर का बन सकता है । उत्तरार्द्ध का पूरा समयदान साधु परम्परा के अनुरूप लोक मंगल के लिये उत्सर्ग करना चाहिये । यही वानप्रस्थ धारण है । कुछ जमा पूँजी बच रही हो, तो उसे बैंक में जमा करके उसके ब्याज से अपना गुजारा किया जाय या प्रज्ञा मिशन के माध्यम से अपने निर्वाह का प्रबन्ध किया जाय । घर-घर जाकर भिक्षा माँगने की पद्धति कभी उपयुक्त रही होगी, पर आज तो उसमें अपमान और कुधान्य की दोनों ही संभावनायें जुड़ गयी हैं । अस्तु निर्वाह की दृष्टि से निश्चिन्त होकर अध्यात्म जीवन व्यतीत करने की योजना बनानी चाहिये । यह कार्य मात्र छुट-पुट पूजा पत्री मात्र से सम्पन्न नहीं हो सकता ।

अध्यात्म तत्त्व ज्ञान और विधि-विधान की शाश्वत रूपरेखा का स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर उन भ्रान्तियों का निराकरण होना चाहिये जो आज इस क्षेत्र को तमसाच्छन्न किये हुए हैं । उसका कोई सत्परिणाम नहीं निकल रहा है । बिडम्बनायें भर चल रही हैं । अन्धी नकल हो रही है । वनवासी जीवन में धूनी जलाना अध्यात्म प्रयोजनों के लिये इसलिये आवश्यक होता था कि वे शीत प्रधान हिमालय जैसे पर्वतीय क्षेत्र में रहते थे । वहाँ वस्त्रों का, भोजन का, हिंस्र पशुओं को डराने का प्रयोजन पूरा होता था । जंगलों में ढेरों सूखी लकड़ी निरर्थक पड़ी रहती थी । उसे काम में लाने से वन प्रदेश की सफाई ही होती थी, पर आज तो स्थिति भिन्न है । लकड़ी कितनी मँहगी है । वृक्ष कटने से उत्पन्न संकटों से सभी परिचित हैं । जो साधु सामान्य तापमान के क्षेत्रों में रहते हैं । वस्त्र भी पहनते हैं । हिंस्र पशुओं के आक्रमण का भय भी नहीं, फिर धूनी किसलिये जलाई जाय और उसके लिये निरन्तर इतनी राशि किसलिये गँवाई जाय ?

वैज्ञानिक शोधकर्त्ताओं के लिये एकान्तवास आवश्यक होता है, जिससे विक्षेप न पड़े । प्राचीनकाल में जो अध्यात्म क्षेत्र के मूर्धन्य शोध कार्यों में संलग्न होते थे । उन्हें अपनी कार्यशाला-

प्रयोगशाला में अनेकों प्रकार के प्रयोग अनुसंधान आविष्कार करने होते थे । इस कार्य के लिये हिमालय जैसे क्षेत्रों में भवन बनाने की अपेक्षा प्रकृति विनिर्मित गुफायें ही उपयुक्त पड़ती थीं । उनमें रहकर वे अपना कार्य सुविधापूर्वक चला लेते थे । उपलब्धियों का लाभ जनसाधारण तक पहुँचाना होता था, तो प्रवास पर–तीर्थयात्रा पर निकल पड़ते थे । इसी प्रकार उनकी कार्य पद्धति का निश्चित रूप चलता रहता था । पर आज तो उनकी अंधी नकल होती है । लोग शहरों के बीच तहखाने बनाकर उन्हें अन्धी गुफा नाम देते हैं और उसमें पड़े–पड़े दिन गुजारते रहते हैं ।

शरीर पर भस्म लगाने का प्रचलन इसीलिये था कि उस लेपन से एक प्रकार की परत जम जाय और सर्दी–गर्मी का प्रकोप शरीर को न सताये । किन्तु जिनके पास ढेरों कपड़े मौजूद हैं वे क्यों उस प्रकार का आडम्बर बनायें । क्षौर कर्म की सुविधा न होने से बाल रखा लिये जाते थे, पर उनकी नकल करने के लिये नकली बालों का जटाजूट खरीदकर पिनों के सहारे शिर के बालों पर उसे क्यों लादे फिरा जाय ? और क्यों लोगों को वास्तविकता रहित भ्रम में डाला जाय ?

वनवासियों के लिये लौकी के या नारियल के कमण्डलु हाथ से बना कर उससे पात्र का काम चलता रहता था, पर आज जब धातुओं के बर्तन बनने लगे हैं, तो स्वच्छता और सुविधा की दृष्टि से उन्हीं का उपयोग किया जाय । चिमटा, त्रिशूल, फरसा उन दिनों उन क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुरूप आवश्यक उपकरण रहे होंगे । उनसे दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति बन पड़ती होगी, पर आज तो उनका कोई प्रयोजन रह नहीं गया है, फिर नाटकों के परिधान बदल कर कुछ से कुछ बनने वाले नटों की कार्य पद्धति क्यों अपनाई जाय ?

तीर्थयात्रा का प्रयोजन धर्म–प्रचार की पद यात्रा से था, पर उस कार्य पद्धति का परित्याग कर दिया गया तो बिना टिकिट यात्रा शुल्क की चोरी करते हुए पुण्य अर्जित करने के लिये, देवालय–जलाशय देखते फिरते रहने के लिये क्यों समय का

अपव्यय किया जाय ?

अध्यात्म के लिये वेष विन्यास या आडम्बर धारण की नकल बनाने की आवश्यकता नहीं है । पुरातन काल के आदर्शों और क्रियाकलापों को जब विस्मृत-उपेक्षित कर दिया गया है, तो उस प्रकार की विडम्बना रचने से क्या लाभ ? दुकान में जो माल है ही नहीं उसकी बिक्री का साइन बोर्ड क्यों लगाया जाय ? हमें अध्यात्म तत्व ज्ञान का उपहासास्पद आडम्बर नहीं बनाना चाहिये वरन् उस महान परम्परा को नये सिरे से पुनर्जीवित करना है ।

स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि, प्रतिष्ठा प्राप्त करने का लक्ष्य लेकर जो चलते हैं, उन्हें अपने इन निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिये निजी पुरुषार्थ से अपनी आजीविका चलानी चाहिये । सार्वजनिक धन पर आजीविका चलाने का अधिकार उन्हीं को है, जो लोकमंगल के लिये अपना जीवन समर्पित किये हैं । जिन्हें लौकिक या पारलौकिक स्वार्थ साधन करने हैं उनके लिये भिक्षा निर्वाह का, सार्वजनिक धन के उपयोग का कोई तुक रह नहीं जाता ।

वर्तमान और भविष्य का क्रियाकलाप

सिद्धान्तों और प्रयोगों का स्वरूप यदि सही हो, तो निश्चय ही उसके परिणाम भी उत्साहवर्धक ही होने चाहिये । शास्त्रकारों ने अतिरंजित अत्युक्तियाँ नहीं लिखी हैं । आप्त पुरुषों ने अपने अनुभव का सार जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उसमें छलावा या बहकावा नहीं हो सकता । शर्त एक ही है कि तथ्यों को समझा और प्रयोगों को तदनुरूप सम्पन्न किया गया हो । इस केन्द्र बिन्दु की उपेक्षा करने पर उसका परिणाम तदनुरूप न निकले, तो दोष निर्धारणों को नहीं, अपनी भ्रान्तियों और त्रुटियों को देना चाहिये ।

सिद्धान्त समझने मात्र से भी समाधान नहीं होता । लोग

प्रत्यक्ष प्रयोग ओर उसकी परिणति देखे बिना संतुष्ट नहीं होते और उस मार्ग को अपनाने का साहस नहीं करते, अस्तु यहाँ उदाहरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता पड़ी । इसके बिना काम चलने वाला नहीं था । इसमें भी एक बात और जुड़ती है कि ऐसा उदाहरण सामने होना चाहिये, जिसके सबंध में कही गयी बात की जाँच पड़ताल हो सके, अन्यथा किम्वदन्तियाँ और अत्युक्तियाँ तो अनेकों दिवंगत लोगों के जीवन क्रम में उनके अनुचरों ने जोड़ रखी हैं. उनके सुनने से भी बात नहीं बनती, क्योंकि यह जानना कठिन है कि अमुक सन्त की सिद्धियों के साथ जितनी चमत्कारी घटनायें जुड़ी हैं, उनमें कितना अंश वास्तविकता का है और कितना मिलावट का । इस असमंजस को दूर करने के लिये एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण प्रस्तुत करना पड़ रहा है, जिसके साथ जुड़ी हुई असाधारण घटनाओं को कोई भी व्यक्ति जाँच पड़ताल करके अपना समाधान कर सकता है और इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि अध्यात्म विशुद्ध विज्ञान है और उसकी परिणतियाँ भौतिक विज्ञान की उपलब्धि से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं ।

इस संदर्भ में प्रज्ञा अभियान के सूत्र संचालक श्रीराम शर्मा आचार्य जी को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा । उनके ८० वर्ष के जीवन क्रम को एक प्रकार से ८० पृष्ठों की एक पुस्तक के रूप में पढ़ा और समझा जा सकता है जिनके प्रत्येक पृष्ठ पर अध्यात्म विज्ञान और उसके प्रतिफल का स्वरूप दृष्टव्य है । उनका अपनाया हुआ राजमार्ग अन्यान्यों के लिये अनुकरणीय हो सकता है, जिस पर चलते हुए वे प्रत्यक्ष और परोक्ष की उपलब्धियों को हस्तगत कर सकें, लक्ष्य तक पहुँच सकें ।

बहुमुखी घटनाओं में से उतना ही उल्लेख पर्याप्त होना चाहिये, जिससे तथ्य, सिद्धान्त एवं प्रयोग पर आवश्यक प्रकाश पड़ सके ।

घटना क्रम परम पूज्य गुरुदेव की पन्द्रह वर्ष की आयु से प्रारम्भ होता है, जिस दिन उन्हें एक दिव्य आत्मा का घर बैठे

सूक्ष्म शरीर से साक्षात्कार हुआ था । उनकी गुरु सत्ता ने प्रकाश मण्डल के मध्य अपनी काया का दर्शन दिया । इस प्रकार की अनोखी झाँकी से एक बालक का भयभीत हो उठना स्वाभाविक था । वार्तालाप चला । सूक्ष्म शरीर में प्रकट हुए दिव्य पुरुष ने कहा–'हम इस जन्म को सही दिशा पर चलाने का मार्गदर्शन करने आये हैं । अनेक जन्मों में भी तुम्हारे साथ रहे हैं, उस लम्बी अवधि में पात्रता इतनी परिपक्व हो गयी कि तुम्हें प्रकाश को ढूँढ़ने कहीं जाना नहीं पड़ा, वरन् प्रकाश स्वयं ही चलकर मार्गदर्शन के लिये स्वयं आ गया ।'

कथन पर विश्वास करने की परम्परा इन दिनों रह नहीं गयी है । श्रोता भ्रम ग्रस्त हो सकते हैं, पर वक्ताओं में से भी ऐसों की कमी नहीं, जो भुलावे में डालकर छलावा साधते हैं । इस रूप में कोई भूत–प्रेत भी हो सकता है और अपना मतिभ्रम भी । यह आशंका–असमंजस मन में उठ रहा था । दिव्य पुरुष ने बालक के मानस को पढ़ लिया और वह किया, जिससे अनुभूति भीतर से उभरे । आँख बन्द करने के लिये कहा गया और पिछले जन्मों की स्थिति का दर्शन क्रम चल पड़ा । पिछले ७०० वर्षों का घटनाक्रम दीखता गया । सभी जन्म अध्यात्म सिद्धान्तों को कार्यान्वित करते हुए अपनी पात्रता अग्रसर करने की दिशा में एक–एक कदम आगे बढ़े थे ।

इस अवधि में प्रायः दस जीवनों की श्रृंखला थी, जिसमें से तीन विशेष महत्वपूर्ण हैं । कबीर, समर्थ गुरु रामदास और रामकृष्ण परमहंस । सभी जन्मों की घटनायें एक ही मार्ग पर चलने की थीं । समय की आवश्यकता के अनुरूप कार्यक्रम तो बदलते रहे, पर दिशा एक ही रही और प्रकाश भरे मार्गदर्शन का केन्द्र बिन्दु भी एक ही । यह दृश्य थे तो दिवास्वप्न, पर उनके प्रत्यक्ष एवं यथार्थ होने जैसा प्रभाव उत्पन्न हुआ । आत्मबोध उभरा और इस जन्म का उपयोग किस प्रकार हो ? यह जिज्ञासा उभरी । मन की जानने वाले से कुछ कहना न पड़ा । उनने अपनी ओर से ही उसे बताना आरंभ कर दिया । जन्म से लेकर

मरण पर्यन्त तक की समग्र योजना बता दी और आवश्यक क्षमता अर्जित करने के लिये चौबीस वर्षों में साधना पूरी कर लेने के लिये कहा । इसे जब भी किया जाय, तब जौ की रोटी और छाछ भर का आहार ग्रहण करने का निर्देश हुआ । परिशोधन और संकल्प की प्रखरता के लिये यह आवश्यक बताया गया और उन दिनों चल रहे स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने के बीच-बीच में उस क्रम को चलाने का उद्देश्य भी पूरा करते रहने का समन्वित कार्यक्रम निर्धारण हुआ ।

यह तपश्चर्या का एक परोक्ष पक्ष रहा । उसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष जीवन की प्रत्यक्ष रूप रेखा के बारे में समझा गया कि वह उपासना, साधना और आराधना के साथ गुथी हुई होनी चाहिये । आजीविका की आवश्यकता पूर्व जन्मों की संचित सम्पदा से इस जन्म में पूरी हो गयी । भूतकाल में किया हुआ दान-धर्म इस जन्म में पैतृक सम्पदा के रूप में उपलब्ध हो गया । इससे उपार्जन में कुछ प्रयास नहीं करना पड़ा । जीवन चर्या को उसी आधार पर निर्धारित किया गया, जिसमें उपासना, साधना और आराधना के तीनों प्रयोजन साथ-साथ निभते रहें ।

उपासना अर्थात् ईश्वर के समीप बैठना, उसके निमित्त अपने समग्र समर्पण की मनोभूमि बनाना । गायत्री को, महा प्रज्ञा को परमेश्वर का प्रतीक मानकर उसके साथ अपने को तद्रूप करने का भावनात्मक प्रयास चला । नदी-नाले की तरह, आग-ईंधन की तरह, सिन्धु में जल-बिन्दु की तरह, पति-पत्नी की तरह यह आत्म समर्पण एकीकरण अद्वैत चलता रहा । कीट-भृंग की गति हो गयी । स्थिति एकाकार जैसी हो गयी ।

द्वितीय प्रयास था-साधना । साधना किसकी ? अपने आपकी । अनगढ़ को सुसंस्कृत बनाने की । माली की काट-छाँट, धोबी की धुलाई, मदारी का पशुओं को कलाकार बनाने का कौशल याद आता रहा । अपने साथ कड़ाई और दूसरों के साथ नरमी करने की नीति अपनायी गयी । लोभ, मोह और अहंकार के महिषासुर, वृत्तासुर से जूझने की रणनीति इस प्रकार बनाई

गई कि इनमें से कोई हावी न होने पाये । साथ ही ज्ञान सम्पदा के अभिवर्धन का प्रयास जुड़ा । ढाल और तलवार दोनों का अभिवर्धन और निष्कासन में प्रयोग होता रहा । साधना आजीवन इसी प्रकार सधती रही ।

व्यावहारिक अध्यात्म का तीसरा चरण—'आराधना । आराधना अर्थात् उदारता, सेवा, संलग्नता, परमार्थ परायणता, लोकमंगल । अपने श्रम, समय, प्रभाव, कौशल एवं साधन इसी निमित्त नियोजित किये जाते रहे ।

परमार्थ के दो स्वरूप हैं—एक गिरों को उठाना, पिछड़ों को बढ़ाना, दुखियों की पीड़ा पर मलहम लगाना । तात्कालिक सहायता के रूप में जो कुछ बन पड़े, उसमें निष्ठुरता का प्रवेश न होने देना । करुणा और उदारता को चरितार्थ करने का कोई अवसर न चूकना । आराधना का दूसरा पक्ष है—सत्प्रवृत्ति संवर्धन और दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन । एक के लिये रचनात्मक क्रिया—कलाप अपनाने पड़ते हैं और दूसरों के लिये संघर्षरत रहना पड़ता है । सुधार और उत्कर्ष दोनों का समन्वय है । इसी समन्वय का नाम युग निर्माण एवं प्रज्ञा अभियान दिया गया । आत्मशोधन की तरह ही इन प्रयोजनों को कार्यान्वित करने की उभय पक्षीय सक्रियता अधिकाधिक प्रबल एवं प्रखर होती रही ।

आध्यात्मिक जीवन इसी ढाँचे में ढलते रहे हैं । उनमें आत्मशोधन का तप और सदुद्देश्यों के साथ जुड़ा योग का समन्वय हो जाता है । सिद्धान्ततः गुरुदेव की जीवनचर्या का आद्या—वधि प्रवाह इसी दिशाधारा में बहता रहा है । उन्होंने स्वाध्याय, सत्संग, चिन्तन और मनन का निरन्तर प्रयोग किया, फलतः वह सूझबूझ उत्पन्न होती रही, जिनके आधार पर सामयिक क्रियाकलापों का शुभारंभ करने से लेकर, साधन जुटाने, सहयोग उगाने से लेकर प्रयास को पूर्णता तक पहुँचाने के लिये जो संभव था, किया जाता रहा । समुचित सतर्कता, जागरूकता और सुव्यवस्था के रहते कदाचित् ही किन्हीं कार्यों में असफलता मिलती है । उन्हें मिली भी नहीं । जिस काम में हाथ डाला, वह प्रगति के चरम स्तर तक

पहुँचा । मार्ग में व्यवधान आये न हों, सो बात नहीं । धर्म को बढ़ते देखकर अधर्म सकपकाता है और आक्रमण करने, कर्त्ता को चोट पहुँचाने से चूकता नहीं । पूतना और ताड़का, सुरसा, त्रिजटा जैसी विपत्ति विभीषिकायें अवरोध बनकर अनर्थ कर सकती है, करती हैं, पर जहाँ आधार सुदृढ़ हैं, वहाँ उन्हें टकराकर अपना ही सिर फोड़ना पड़ता है । गुरुदेव के साथ में भी अनेक बार ऐसी अग्नि परीक्षा के अवसर आते रहे, पर वे खरे सोने की तरह उसमें से गुजरते रहे ।

चिरकाल तक अपनी धुलाई और रंगाई के उपरान्त उभरी पात्रता और संकल्प, साहस, संयम और अनुशासन की अग्नि परीक्षा में जब प्रामाणिकता सिद्ध हो गयी तो दैवी अनुग्रह की अहैतुकी अनुकम्पा अन्तरिक्ष से बरसने लगी और उस अमृत वर्षा ने साधक को निहाल कर दिया । जिस प्रकार आरम्भिक मार्गदर्शन के लिये उस सूक्ष्म शरीरधारी देव पुरुष ने स्वयं पधारने का अनुग्रह किया था । उसी प्रकार पच्चीस वर्ष की भावना और क्रिया का पर्यवेक्षण करने के उपरान्त दुबारा सुधि ली और अपनी सामर्थ्य भण्डार का एक बड़ा अंश अनुदान के रूप में देने का निश्चय किया इसके लिये हिमालय आने और उनके निवास केन्द्र पर उपस्थित होने का आह्वान आया ।

पूज्य गुरुदेव की तीन बार हिमालय यात्रा हुई । इसमें सुमेरू पर्वत क्षेत्र की नन्दन वन घाटी–उत्तराखण्ड परिधि में प्रतिष्ठित अप्रख्यात कैलाश मानसरोवर क्षेत्रों की यात्रा कराई गयी । जो ऋषि तपस्वी सूक्ष्म शरीर से उस प्रदेश की दिव्य गुफाओं में तप करते हैं, उनके साथ परिचय ओर सम्पर्क कराया गया । घोर अभावग्रस्त उस वातावरण में अपना संरक्षण देकर निवास अनुभव कराया गया । इसके उपरान्त यह बताया गया कि युग–धर्म के निर्वाह में क्या–क्या कदम किस क्रम से उठाये जाने चाहिये और उनकी सफलता में दिव्य सहयोग किस प्रकार, किस मात्रा में मिलेगा, स्वयं कितना पुरुषार्थ और उच्च आत्माओं को खोज निकालने का कार्य किस प्रकार सम्पन्न करना होगा । साथ ही

यह वचन भी दिया गया कि कठिनाई के प्रत्येक अवसर पर उनकी सहायता किस माध्यम से पहुँचती रहेगी ।

भिन्न समयों पर सम्पन्न हुए इन प्रवासों में उत्तराखण्ड क्षेत्र की रहस्यमयी भूमिकाओं से संबंधित जो जानने योग्य था, जनाया गया, देखने योग्य था, दिखाया गया ।

भावी निर्धारण में जो कार्य सौंपे गये, वे यह थे (१) युग परिवर्तन की भूमिका सम्पन्न करने वाले प्रमुख दो केन्द्र यमुना और गंगा के तट पर स्थापित करना । (२) सुसंस्कारी आत्माओं को ढूँढ़ निकालना और उनमें प्राण फूँक कर सृजन प्रयासों में संलग्न होने के लिये कटिबद्ध करना (३) युगान्तरीय चेतना को व्यापक बनाने वाला एक संगठन खड़ा करना (४) स्थान-स्थान पर युग धर्म को जीवन्त बनाने के लिये धर्म-संस्थान खड़े करना (५) ढूँढ़े हुए संस्कारवान आत्माओं का एक विशालकाय सम्मेलन करके उन सबको परस्पर परिचित कराना और कार्य शैली निर्धारित करना (६) आर्ष साहित्य को सर्वसुलभ करना (७) युग साहित्य का सुविस्तृत सृजन और उनका विभिन्न भाषाओं में अनुवाद-विस्तार (८) युग सृजेताओं का छोटा और बड़ा प्रशिक्षण क्रम चलाना (९) अध्यात्म और विज्ञान पर परस्पर तालमेल बिठाकर प्रत्यक्षवादी बुद्धिवादियों का समाधान करना (१०) गायत्री महामंत्र और यज्ञ विज्ञान को विस्मृति के गर्त से निकालकर सतयुगी गौरव-गरिमा प्रदान करना (११) साधु-ब्राह्मण की वानप्रस्थ परम्परा का पुनर्जीवन (१२) चरक सुश्रुत की आयुर्वेद परिपाटी को पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के समतुल्य प्रतिष्ठा प्राप्त कराना (१३) विदेशों में-विश्व भर में युग चेतना का विस्तार करना (१४) वायुमण्डल और वातावरण के परिशोधन के हेतु प्रज्ञा पुरश्चरण की सुनियोजित व्यवस्था करना ।

समुद्र मंथन से चौदह रत्न निकले थे । उसमें देव दानवों का तो परिश्रम मात्र लगा था । प्रमुख भूमिका तो कच्छप भगवान और शेषनाग की थी । यह उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि दोनों को मिलकर चौदह सूत्री योजना सम्पन्न करनी चाहिये ।

इसके लिये साधन और सहयोग जुटाने के लिये सामर्थ्य भर प्रयत्न करना चाहिये । यों समय के प्रभाव से लोकमानस में निकृष्टता घर कर गयी है और लोभ, मोह, अहंकार ने जन-जन को उन्मादी स्तर का बना दिया है, फिर भी महानता का बीज नाश नहीं होता । देव मानव किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं विद्यमान रहते ही हैं । उन मणि-मुक्तकों की तलाश करने के लिये निकला जाय । गहरे समुद्र में गोता लगाकर मोती ढूँढ़ निकालने वाले गोताखोरों जैसा साहस जुटाया जाय, तो कठिन दीखने वाला कार्य भी सरल हो जाता है । कठिन को सरल कर दिखाना दोनों के समन्वय से संभव होकर ही रहना चाहिये ।

समूची योजना को तीन चरणों में विभाजित किया गया, जिसमें २४ गायत्री के महापुरश्चरण करने और उपासना, साधना और आराधना के अभ्यास से व्यक्तित्व को अष्ट धातु की तोप जैसा परिपक्व करना था ।

दूसरे चरण में उपरोक्त चौदह सूत्री योजना को कार्यान्वित करके युग परिवर्तन के अनुरूप वातावरण बनाना और उसके लिये आवश्यक साधन एवं सहयोग जुटाकर सामर्थ्यवान ढाँचा खड़ा करना ।

तीसरे चरण में वह क्रियाकलाप हैं, जिसमें प्रत्यक्ष नहीं, अप्रत्यक्ष भूमिका सम्पन्न की जा रही है । अदृश्य जगत की प्रतिकूलता का अनुकूलन किया जा रहा है । सर्वनाश के कगार पर खड़ी इस धरती और मानवी सभ्यता को सर्वनाश की विभीषिका से बचाने का प्रयास किया जा रहा है । इसके अतिरिक्त जीवन्त आत्माओं को नव सृजन की अनेकानेक योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये उनकी अन्तःचेतना को प्रभावित उत्तेजित करने का कार्य ब्रह्मबीज से ब्रह्मकमल के उत्पादन-विकास का कार्य विगत एक वर्ष से चल रहा है ।

परम पूज्य गुरुदेव के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में प्रथम दो चरण संपन्न हो चुके । अपनी काया रूपी प्रयोगशाला व समाज रूपी कार्यशाला में उनके किये गये प्रयोगों का परिणाम है-अध्यात्म

तत्व-दर्शन को जन सुलभ बनना, समाज में सत्प्रवृत्तियों का बीजारोपण व विस्तार होना । गायत्री जयन्ती सन् १९९० (२ जून १९९०) को उनकी स्थूल काया के महाप्रयाण के बाद वे सूक्ष्म एवं कारण शरीर से सक्रिय हुए हैं । अंतिम पाँच वर्षों में वे सूक्ष्मीकरण साधना के शीर्ष पर पहुँच चुके थे । पाँच वीर भद्र के रूप में उनके पाँच कोण सक्रिय विकसित हो चुके थे । अब परोक्ष जगत में कुछ ऐसी हलचलें पैदा होने जा रही है, जो भावी विश्व व्यवस्था का कायाकल्प कर के रख देंगी ।

नव सृजन की विशालकाय कार्य पद्धति

परम पूज्य गुरुदेव द्वारा संकल्पित अनुष्ठान के अन्तर्गत चौबीस वर्ष में चौबीस लक्ष जप के चौबीस महापुरश्चरण पूरे हो जाने पर उस जप की आहुतियों का सनातन क्रम पूरा करना ही था । उसके बिना वह असाधारण तप अधूरा ही रह जाता । इसके लिये चौबीस लाख आहुतियों का महायज्ञ होना था । इसको अनेक वर्षों तक लम्बा खींचने की अपेक्षा यह उपयुक्त समझा गया कि सहस्र कुण्डी गायत्री महायज्ञ का आयोजन किया जाय और उसमें एक लाख याज्ञिकों द्वारा पाँच दिन तक यज्ञ चलाया जाय । वह सन् १९५८ कार्तिक सुदी एकादशी से पूर्णिमा तक सम्पन्न हुआ ।

कठिनाई यह थी कि याज्ञिक कहाँ से जुटाये जाँय । इतने बड़े यज्ञ के लिये शाकल्य, घी, समिधा, यज्ञमण्डप, प्रवचन पण्डाल आगन्तुकों के लिये निवास, भोजन, पानी, सफाई, रोशनी आदि का प्रबन्ध कैसे हो ? इतने लोगों के लिये एक साथ तम्बू लगाने जैसी भूमि कहाँ से मिले ? राशन पकाने, परोसने वाले आदि की छोटी-छोटी क्रियायें ऐसी थीं जिसके लिये प्रचुर धन की व्यवस्था करनी थी । इतने गायत्री साधकों को निमन्त्रण कैसे पहुँचे ? बसों, रेलों का इतना प्रबन्ध-एक ही दिन में लाखों की भीड़ का आना, एक ही दिन में जाना किस प्रकार बन पड़े ।

पूज्य गुरुदेव की जेब में केवल पाँच हजार रुपये थे । खर्च था पचास लाख रुपये का । सामान्य बुद्धि काम नहीं कर सकती कि यह असंभव, संभव कैसे हो सकेगा ? विशेषतया तब, जब कि सार्वजनिक चंदा उगाहने की नीति आरम्भ से अन्त तक नहीं रही । कार्यकर्त्ता एक दर्जन से अधिक नहीं थे । सोचने-विचारने में ही ढेरों समय चला गया, पर कुछ करते-धरते नहीं बन पड़ा ।

समय आया और दैवी चमत्कार की तरह एक-एक करके सभी गुत्थियाँ सुलझती गयीं । देश के कोने-कोने के गायत्री उपासकों को निमंत्रण पत्र पहुँचे । वे ठीक समय पर आये । एक लाख याज्ञिक, तीन लाख दर्शनार्थी, तीर्थयात्री जो साथ में आये थे । चार लाख को ठहरने, खिलाने आदि का प्रबन्ध करना पड़ा । सभी कार्य ऐसी सुन्दरता एवं सुव्यवस्था से सम्पन्न हुआ कि सात मील के दायरे में ऋषियों के नाम पर सात नगर बस गये । तम्बुओं की लाइन ने कुम्भ का मेला फीका कर दिया । बिना मूल्य भोजन वाले सात लंगर दिन-रात चलते रहे । सफाई, रोशनी में कोई कमी नहीं आयी । कोई भूखा या बिना आच्छादन के न रहा । सभी क्रमबद्ध रूप से भव्य यज्ञ मण्डप में आहुतियाँ देते रहे । न एक पैसे की चोरी हुई न किसी को ठोकर लगने जैसी दुर्घटना का सामना करना पड़ा । राशन भण्डार अक्षय हो गया । आसपास के दर्शकों की भीड़ टूट पड़ी । समूचा समुदाय दस लाख के करीब जा पहुँचा । भव्यता और श्रद्धा उमड़ी पड़ती थी । लोगों को एक ही बात कहते सुना गया कि इतना विशाल और सुव्यवस्थित आयोजन उनमें से किसी ने नहीं देखा । हजारों लाउडस्पीकर, हजारों जैनरेटर, पानी, रोशनी, सूचना आदि का काम कर रहे थे । सातों नगरों में टेलीफोन फिट थे । स्वयंसेवक इतने कि सारा काम हाथों-हाथ उठा लिया गया । अव्यवस्था नाम की कोई चीज कहीं देखने में नहीं आयी । जहाँ-तहाँ दान पेटियाँ रखी थीं । उन्हीं में पड़ी रेजगारी से समूचा खर्च चल गया । न पैसे की कमी पड़ी न बचत ।

इसी अवसर पर भावनाशील याज्ञिकों को प्रवचन पण्डाल में

एकत्रित करके 'गायत्री परिवार' का गठन किया गया । सदस्यता शुल्क एक माला गायत्री जप । संगठन एवं प्रचार कार्यों के लिए एक घंटा नित्य समयदान । मिशन बनकर रातों–रात खड़ा हो गया और उपासना, साधना, आराधना का कार्यक्रम स्थानीय परिस्थितियों की मनःस्थिति के अनुरूप चल पड़ा । यज्ञ आयोजन जितना चमत्कारी था उतना ही यह भी कि एक रात में एक लाख सदस्यों वाला संगठन बन पड़ा और विदाई के बाद निर्धारित कार्यक्रमों को पूरा करने में प्राणपण से जुट पड़ा । प्रक्रिया को अध्यात्म का प्रथम चमत्कार कह सकते हैं । आगंतुकों, स्वयसेवकों, व्यवस्थापकों, सहायकों के पास कोई दिव्य व्यक्ति पहुँचा और उसी ने सबको इस आयोजन की भूमिका निभाने के लिए बाधित किया । सफलता का श्रेय किसी व्यक्ति को नहीं दिव्य सत्ता को ही मिलना चाहिए, जिसके हाथों गुरुदेव ने अपने को बेचकर उसे खरीद लिया था ।

दूसरा चमत्कार है इतने ऊँचे स्तर के भावनाशील और कर्मठ कार्यकर्त्ताओं का अनन्य सहयोगी के रूप में बिना किसी वेतन के मिल जाना । इसका प्रथम श्रीगणेश माताजी से हुआ । गुरुदेव की धर्मपत्नी शक्तिस्वरूपा माता भगवती देवी को हर कोई माताजी कहता है । वे जिस दिन से जुड़ीं उसी दिन से उन्हीं की काया–छाया बन गयीं । घर–गृहस्थी का काम तो राई–रत्ती जितना था, समूचा दायित्व मिशन का, उसके कार्यकर्त्ताओं का प्रबंध करना । वे अन्नपूर्णा बन कर रहीं और साथ ही स्नेह वात्सल्य का अमृत भी संपर्क में आने वालों को पिलाती रहीं । परमपूज्य गुरुदेव की प्रज्ञा और वंदनीय माताजी की श्रद्धा का समन्वय एक जादू बन गया । उसके सहारे लाखों का हृदय जीत लिया गया । जिसकी भी आत्मीयता सघन हुई उसे नवसृजन में जुटने की प्रेरणा मिली । माताजी की श्रमशीलता, सादगी, शालीनता, ममता और व्यवस्था बुद्धि ने इतना बड़ा काम किया कि जो उनके सम्पर्क में आया जन्म भर अपने को उन्हीं की संतान मानता रहा । यह भाव गरिमा उनकी इस वृद्धावस्था में भी

घटी नहीं है वरन् आयु के साथ-साथ बढ़ती ही आयी है । पूज्य गुरुदेव कभी-कभी सुविधानुसार जब भी उनकी चर्चा करते थे, तो उन्हें नारी शरीर में दिव्यलोक से अवतरित हुई प्रतिमा, गंगा समतुल्य कहते थे । पूज्य गुरुदेव के कार्यों में आधे से अधिक सफलता का श्रेय माताजी को ही है । उनकी ममता अमृतोपम है । वह थकों में नवजीवन और हारे हुए में प्रचण्ड प्राण भरती हैं । कोई चाहे तो इस स्वर्ण सुयोग को भी अध्यात्म का एक चमत्कार कह सकता है ।

आलोक बिखरा तो उसने असंख्य भावनाशीलों को प्रभावित ही नहीं तरंगित भी किया । गायत्री तपोभूमि, युग निर्माण योजना, शान्तिकुञ्ज और ब्रह्मवर्चस् में जो कार्यकर्त्ता काम करते हैं, उनमें से अधिकांश ग्रेजुएट स्तर के शिक्षित और औसतन दो हजार रुपया मासिक कमाने वाले थे । हरिद्वार और मथुरा के आश्रमों में उनकी संख्या पाँच सौ से अधिक है । कार्य क्षेत्र में फैले हुए प्रायः दस हजार हैं । वे अपना समय घर-परिवार को नाम मात्र को देते हैं । सोते-जागते मिशन के निमित्त ही सोचते-करते रहते हैं । इस समुदाय में आधी से अधिक संख्या ऐसी है, जो अपने पुराने संग्रह के आधार पर खर्च चलाते हैं । जिनकी स्थिति वैसी सम्पन्न नहीं है वे भोजन-वस्त्र मात्र की राशि मिशन से लेते हैं । आपत्तिकाल के लिये कोई कुछ बचाता नहीं । ऐसा प्रसंग आता है तो उनकी आवश्यकता मिशन पूरी कर देता है । उसे साधु-ब्राह्मण परम्परा का आधुनिक एवं उद्देश्यपूर्ण संस्करण कह सकते हैं । इस स्तर के कर्मठ और आदर्शवादी सहयोगी अन्य किसी को कदाचित ही इन दिनों उपलब्ध हो रहे हों । उन सबके नामों का. योग्यताओं का, पुरुषार्थों का, त्यागों का उल्लेख तो यहाँ संभव नहीं, पर उनमें से प्रत्येक ऐसा है जिसकी गुणगाथा में एक-एक पुस्तक बन सकती है । इस युग में ऐसी प्रतिभाओं का एक छत्र के नीचे एकत्रित को जाना कांग्रेस के स्वतंत्रता आन्दोलन एवं बुद्ध के भिक्षु समुदायों का स्मरण दिलाता है और एक चमत्कार जैसा प्रतीत होता है ।

प्रज्ञा मिशन की अपनी पाँच इमारतें हैं । (१) गुरुदेव की जन्म भूमि–आँवलखेड़ा (२) मथुरा की गायत्री तपोभूमि और (३) युग निर्माण योजना (४) हरिद्वार की शान्तिकुञ्ज, गायत्रीनगर और (५) ब्रह्मवर्चस् शोध संस्थान । यह सभी बीस वर्ष के भीतर बनी हैं । इन सब को एक स्थान पर एकत्रित कर लिया जाय तो किसी बड़े विश्वविद्यालय से वे कम नहीं वरन् अधिक ही बैठेंगी । इनका आरंभ गुरुदेव ने अपनी खुद काश्त की जमीन और विशाल जमींदारी के उन्मूलन पर मिली पुनर्वास राशि से किया था । वह धन एक लाख से अधिक नहीं था । परिवार को पैतृक सम्पदा नहीं दी वरन् उन्हें स्वावलंबन के आधार पर निर्वाह करने की सलाह दी । भव्य इमारतों को देखते हुए वह राशि नगण्य ही कही जा सकती है । चन्दा माँगने की परम्परा आरंभ से नहीं अपनायी गयी । सेठ, साहूकारों या सरकार से भी कोई आर्थिक अनुदान नहीं मिला । परिजन एक मुट्ठी अनाज या दस पैसे की राशि निकालते रहे । उसका एक अंश संस्था को पहुँचता रहा । स्वेच्छा सहयोग भी कइयों ने कार्य का महत्व देखते हुए दिया । इस प्रक्रिया से जो सहयोग मिलता रहा उसी ने यह भव्य इमारतें बना दीं ।

आँवलखेड़ा (आगरा से १७ मील सड़क किनारे) में एक हाईस्कूल, एक कन्या हाई स्कूल, अस्पताल, डाकखाना, सहकारी समिति, नर्स, सरकारी कार्यालय, सहकारी बैंक आदि कार्यक्रम चलते हैं । इनमें चलती गतिविधियों से सेकड़ों छात्र, सैकड़ों छात्राओं, सैकड़ों मरीज, महिलायें तथा कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन मिलता है । साथ में जुड़ा भव्य गायत्री मंदिर भी है, जहाँ कथा–कीर्तन का सिलसिला चलता ही रहता है ।

गायत्री तपोभूमि मथुरा में भव्य देवालय, तीर्थों का जल–रज, २४० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन, नित्य यज्ञ, स्वावलम्बन विद्यालय, नियमित जप, ध्यान जैसे कार्यक्रम चलते हैं । छात्रों के लिये निःशुल्क शिक्षा तथा छात्रावास का प्रबंध है ।

युग निर्माण योजना का प्रमुख कार्य युग साहित्य का

प्रकाशन है । निजी विशालकाय प्रेस है, जिसमें कितनी ही भाषाओं की पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं तथा युग साहित्य छपता है । मशीन कक्ष में साहित्य स्टोर का विस्तार देखते ही बनता है । शुद्ध हवन सामग्री लागत मूल्य पर देने का भी यहाँ प्रबन्ध है । प्रज्ञा पुस्तकालय, स्वाध्याय मण्डलों का सूत्र संचालन भी यहीं से होता है ।

कार्य विस्तार को देखते हुए सरकार ने इसी इमारत में गायत्री तपोभूमि पोस्ट आफिस भी खोल दिया है । जो कार्य और कर्मचारियों की दृष्टि से मथुरा हैड पोस्ट आफिस के उपरान्त दूसरे नम्बर का बड़ा डाकखाना है । बैंक का दफ्तर भी इसी इमारत में है । इससे साहित्य पार्सलों तथा पत्रिकाओं को देश-देशान्तरों में भेजने की व्यवस्था सरल पड़ती है । मिशन की सभी पत्रिकाओं की ग्राहक संख्या छः लाख के लगभग है । अकेली अखण्ड ज्योति ही साढ़े तीन लाख के करीब छपती है । इसका दफ्तर भी इन्हीं इमारतों से सटा हुआ है ।

मथुरा में तीर्थयात्रियों की बड़ी संख्या इस भव्य आश्रम को देखने आती है और उसे देखकर अनुमान लगाती है कि ईसाई मिशन जैसी यह योजना अपने ढंग की भारत में अनोखी है ।

हरिद्वार का शान्तिकुञ्ज पूज्य गुरुदेव की तपस्थली एवं वन्दनीया माताजी की वर्तमान साधना स्थली है । साधना को सही स्थान, सही मार्गदर्शन में करने वाले परिजन यहाँ आते, ठहरते रहते हैं । पाँच-पाँच दिन के प्रज्ञा परिजन सत्र और एक-एक महीने के युग शिल्पी सत्रों का उपक्रम यहाँ निरन्तर चलता रहता है । युग शिल्पी प्रधानतया संगीत, प्रवचन एवं पौरोहित्य प्रक्रिया सीखते हैं । इस माध्यम से अब तक हजारों प्रचारक प्रशिक्षित किये जा चुके हैं, जो अपने-अपने क्षेत्रों में जन जागरण और प्रज्ञा मिशन का रचनात्मक कार्य बड़ी तत्परता और सफलता के साथ सम्पन्न करते रहते हैं ।

शान्तिकुञ्ज में देवात्मा हिमालय का अनोखा भव्य मंदिर है । तीर्थ परम्परा का यहाँ की गतिविधियों में समग्र समावेश किया

गया है । प्राचीन काल के तीर्थों में छात्रों के गुरुकुल, वानप्रस्थों के आरण्यक और सर्वसाधारण को जीवन कला का प्रशिक्षण, इस पुण्य परम्परा का शान्ति कुञ्ज की कार्य पद्धति में समग्र समावेश है । भारत के प्रमुख तीर्थों के विशालकाय चित्रों को मन्दिर स्तर के कक्षों में सजाया गया है । गायत्री माता का मंदिर एवं ऋषियों की भव्य प्रतिमायें भी इसी क्षेत्र में स्थापित हैं । नौ कुण्डी यज्ञशाला में नित्य दो घण्टे गायत्री यज्ञ होता है एवं अखण्ड रुद्राभिषेक की प्रक्रिया चलती है । जिस अखण्ड घृत दीप पर गुरुदेव ने अपने महापुरश्चरण पूरे किये थे वह विगत ६६ वर्षों से अनवरत जल रहा है । इसके दर्शन भी प्रातःकाल वंदनीया माताजी को प्रणाम करते समय सभी को होते हैं ।

तीर्थ परम्परा के अनेकों पक्ष ऐसे हैं जिन्हें इस पुण्य भूमि में मूर्तिमान एवं गतिशील देखा जा सकता है । उदाहरणार्थ चरक परम्परा का पुनर्जीवन लिया जा सकता है । गायत्री नगर में सुविस्तृत जड़ी–बूटी उद्यान है । उसमें देश के कोने–कोने से दुर्लभ जड़ी–बूटियों का उद्यान लगाया गया है । उनके नये गुण–धर्मों का वैज्ञानिक परीक्षण करने के लिये आधुनिक यंत्र उपकरणों की प्रयोगशाला लगी है । जिसमें यह सिद्ध किया जाता है कि किस व्याधि का निवारण किस प्रकार की वनौषधि से किस प्रकार हो सकना संभव है । ऐलोपैथी की फार्मोकोपिया के समतुल्य वनौषधि विज्ञान को ऐसा स्वरूप दिया जा रहा है जिसे संसार भर के चिकित्सा शास्त्री मान्यता प्रदान कर सकें ।

साधना प्रयोजन के लिये जो लोग यहाँ आते हैं उनका शारीरिक मानसिक पर्यवेक्षण करने वाले उपकरण इसी कक्ष में हैं । साधना बताने से पूर्व यह जाँचा जाता है कि किसकी स्थिति कैसी है और उसे किस प्रकार की साधना करनी चाहिये । जाते समय भी यह देखा जाता है कि उसकी स्थिति में क्या अन्तर पड़ा तथा भविष्य में उसे क्या करते रहना चाहिये । व्यक्ति की स्थिति के अनुरूप साधनायें बताने की प्रक्रिया मात्र इस एक ही स्थान में चलती है । शेष स्थानों में तो सभी गधे–घोड़ों को एक ही लाठी

से हाँका जाता है । फलस्वरूप की गयी साधनायें अस्त-व्यस्त हो जाती हैं । पाँच दिन के या एक महीने के सत्रों में शिक्षार्थियों को उनकी शारीरिक, मानसिक आवश्यकताओं के लिये जिन वनस्पतियों की आवश्यकता है उनका परामर्श भी दिया जाता है और यथासंभव उन्हें उपलब्ध भी कराया जाता है । यह व्यवस्था अब इस सीमा तक बढ़ गयी है कि युग शिल्पी सत्र में सम्मिलित होने वालों को फर्स्टएड होमनर्सिंग आदि के कोर्स भी पूरे करा दिये जाते हैं । वनौषधियों को अपने स्थानों में लगाकर उनका उपयोग पारिवारिक स्वास्थ्य के निमित्त भी करना सिखा दिया जाता है ।

प्रशिक्षण का क्रम आश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था में ओत-प्रोत है । आश्रमवासी ग्रहस्थों के बच्चों के लिये गुरुकुल का प्रबन्ध है । यह गुरुकुल सरकारी मान्यता प्राप्त भी है । महिलाओं की शिक्षण कक्षायें अपने ढंग की अनोखी हैं । उन्हें वे विषय पढ़ाये जोते हैं जो परिवार निर्माण के सम्बन्ध में आवश्यक हैं ।

मिशन का कार्यक्षेत्र अभी हिन्दी भाषी लोगों तक सीमित है । अनायास ही उसका विस्तार देश भर में हो रहा है और उसकी लपेट में सभी भाषा भाषी क्षेत्र आ रहे हैं । सभी धर्म सम्प्रदायों में भी विचार क्रान्ति के सूत्रों को संजोया जा रहा है, मात्र हिन्दू धर्म या हिन्दी भाषी लोगों तक उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता । इसी संभावना को देखते हुए एक सर्व-धर्म समन्वय एवं विश्व की समस्त भाषाओं का नालन्दा एवं तक्षशिला स्तर का विश्वविद्यालय शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार में खोला गया है । अगले दिनों भारतीय संस्कृति विश्व संस्कृति बनेगी । आज कहीं भी भारतीय संस्कृति की महत्ता, गरिमा दर्शाने वाली कोई संस्था कहीं है नहीं । उसी की एक विशाल स्थापना शान्तिकुञ्ज में की जा रही है । जहाँ भारतीय संस्कृति के हर पक्ष का गहराई से विवेचन किया जाये एवं विश्व के नागरिकों को प्रशिक्षण भी दिया जा सके ।

आश्रम में शिक्षार्थियों तथा आगन्तुकों की भारी भीड़ लगी रहती है । उन सब का सार्वजनिक शिक्षण सायंकाल प्रज्ञा पुराण कथा संगीत कीर्तन के माध्यम से होता है ।

आश्रम का एक विशिष्ट विभाग वीडियो फिल्मों का है । मिशन की विचारधारा को व्यापक बनाने के लिये सभी केन्द्रों में इन वीडियो फिल्मों को भविष्य में अनवरत रूप से भेजा जायेगा । पिछले दिनों तो पूज्य गुरुदेव एवं माताजी आदि के जीवनोत्कर्ष और अध्यात्म विज्ञान का स्वरूप समझाने वाले प्रवचन तथा जीवन प्रसंग पर आधारित वीडियो फिल्म ही प्रस्तुत की गयी है । अगले दिनों इस विषय का इतना अधिक और इतना समग्र स्वरूप बनने जा रहा है जिसमें आज की स्थिति के अनुरूप लोक शिक्षण लोकप्रिय माध्यमों से किया जा सके । फिल्म दर्शक समाचार पत्र पाठकों से भी अधिक हैं । इसलिये इतने लोकप्रिय माध्यम को अछूता छोड़ा नहीं जा सकता । अतः शान्तिकुञ्ज का यह नया निश्चय है कि प्रेस प्रकाशन की तरह वीडियो फिल्मों की एक सुविस्तृत योजना को इस प्रकार विकसित किया जा सके कि उससे सभी भाषाओं और सभी सम्प्रदायों के लोग समान रूप से लाभ उठा सकें । युग पुरुष, ऋषि चिन्तन एवं संजीवनी साधना नामक फिल्मों से १९८९–९० में हुई शुरूआत अगले दिनों और विशालकाय रूप लेगी ।

मिशन का विस्तार ५० लाख लोगों तक हो जाने के कारण उसके सदस्य हरिद्वार तीर्थयात्रा आदि के निमित्त आते रहते हैं जिनके ठहरने से लेकर भोजन तक का निःशुल्क प्रबन्ध किया गया है । यह भण्डारा अनवरत रूप से चलता रहता है । सभी यहाँ बिना किसी भेदभाव के प्रसाद पाते हैं ।

प्रज्ञा परिजनों की निजी आध्यात्मिक और सांसारिक समस्यायें भी होती हैं । उन्हें सुलझाने के लिये मात्र पत्र व्यवहार ही एक माध्यम है । रचनात्मक कार्यों में संलग्न होने, उतार–चढ़ावों का सामना करने के लिये भी इतने अधिक लोगों के साथ सम्पर्क इसी माध्यम से रखा जा सकता है । इसलिये 'पत्राचार विद्यालय' विभाग के रूप में एक अतिरिक्त कार्य पद्धति यहाँ चलती है । औसतन तीन हजार पत्रों का नित्य आना और उनका उत्तर यथासमय चला जाना यह कार्य भी अपने आप में अद्भुत है । पिछले दिनों इस

विभाग को कम्प्यूटर व्यवस्था से जोड़ा गया है । सरकार ने कार्य विस्तार को देखते हुए शान्तिकुञ्ज नाम से एक पोस्ट आफिस की व्यवस्था भी कर दी है, जिसके साथ तार घर भी जुड़ा हुआ है ।

साहित्य सृजन का कार्य शान्ति कुञ्ज में ही होता है । आरम्भिक दिनों में भारतीय संस्कृति का स्वरूप प्रगति परायण सिद्ध करने के लिये आर्ष साहित्य के अनुवाद और प्रकाशन का कार्य हाथ में लिया गया था । उसके अन्तर्गत चारों वेद, १०८ उपनिषद्, छहों दर्शन, २४ स्मृतियाँ, आरण्यक–ब्राह्मण, योग वशिष्ठ आदि पुरातन ग्रन्थों को सस्ते दाम में जन–जन तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया था, जो पूर्णरूपेण सफल रहा । इस प्रयास ने भारतीय संस्कृति के अध्येत्ताओं और प्रेमियों को एक नया प्रकाश दिया । वे प्रतिगामिता से प्रगतिशीलता की ओर मुड़े ।

इसके उपरान्त यह लेखन कार्य व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण, समाज निर्माण की दिशा में मुड़ा । उसमें नैतिक क्रान्ति को प्रमुखता दी । ऐसी लगभग ५०० पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की एक सीरीज भी सम्मिलित है ।

कथा–कीर्तन देश में धर्म प्रचार का बड़ा उपयोगी माध्यम साबित हुआ है । उस आधार को अपनाकर युग संगीत के टेप कैसेट्स भी बनते और प्रसारित होते रहते हैं । उन्हें अच्छी ख्याति मिली है । इसी प्रकार 'प्रज्ञा पुराण' नामक एक ग्रन्थ का सृजन नये सिरे से हुआ है । उसके पाँच विशालकाय खण्ड अब तक छप चुके हैं । उन्हें प्राचीन पुराणों के स्तर का बनाया गया है । संस्कृत के श्लोक और टीका, इसके अतिरिक्त श्लोकों के साथ पुरातन कथायें इस प्रकार गूँथी गयी हैं कि उनके माध्यम से आधुनिक समस्याओं का प्रगतिशील समाधान पुरातन इतिहास पुराणों में ढूँढ़ा जा सकता है । प्रज्ञा पुराण के चार खण्डों का मूल्य लगभग १४०) रुपया हो जाने पर भी विज्ञ समाज में इसकी भारी माँग रही है । कई संस्करण छप चुके हैं और अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हो रहा है । मुद्रण प्रकाशन का कार्य

युग निर्माण प्रेस, मथुरा में होता है । एक छोटा प्रेस युगान्तर चेतना प्रेस नाम से हरिद्वार में भी है, जिसमें तात्कालिक आवश्यकता की सामग्री छाप ली जाती है ।

मिशन की कई पत्रिकायें प्रकाशित होती हैं, जिनका लेखन, सम्पादन एक ही कलम से होता रहा । पूज्य गुरुदेव ने जीवन भर लेखनी की साधना नियमित चार घण्टे प्रतिदिन लेखन के माध्यम से की । अपने पीछे वे एक सशक्त तंत्र छोड़ गये हैं, जो उन्हीं के विचारों को प्रस्तुत करता रहेगा । स्वयं उनने जो जीवन भर लिखा वह उनके वजन से दुगुना है । अखण्ड ज्योति और युग निर्माण योजना हिन्दी पत्रिकायें हैं । इससे पूर्व उन्हें मराठी, बंगाली, पंजाबी में भी छापा जाता था । इन दिनों कागज की अत्यधिक मँहगाई के कारण तीनों बन्द हैं पर थोड़ी–सी अनुकूलता होते ही न केवल बन्द पत्रिकाओं को फिर से आरम्भ किया जायेगा वरन् अंग्रेजी तथा दक्षिण भारत की भाषाओं में भी इन्हें प्रकाशित करने की योजना है । इस बीच अन्य भाषा भाषियों तथा विदेशों के लिये अंग्रेजी में 'फोल्डर प्रकाशन' योजना चल रही है । अब तक महत्वपूर्ण विषयों पर ५० फोल्डर प्रकाशित हो चुके हैं । आगे और भी छपते रहेंगे । हिन्दी में तो ऐसे स्वल्प मूल्य के ट्रैक्टों का ६०० की संख्या में अलग से प्रकाशन हो चुका है ।

खगोल विद्या में भारत अग्रणी रहा है । ज्योतिष की व्यापक और सही खोज का इतिहास भारत से ही आरंभ होता है, पर दुर्भाग्य ही कहना चाहिये कि उसे भ्रम जंजाल के रूप में विकसित किया गया और ज्योतिषियों ने उसे भविष्य कथन का माध्यम बनाकर उल्लू सीधा करना आरंभ कर दिया । ज्योतिर्विज्ञान का समय–समय पर ग्रह गणित दृश्य पर्यवेक्षण के आधार पर संशोधन होता रहा है । कारण कि घण्टा मिनट के हिसाब से ग्रहों की चाल ऐसी नहीं है जिससे गणित अनुबन्धों में बाधा आ सके । उनमें समय–समय पर अन्तर पड़ता रहता है । उसे दृश्य के आधार पर ही संशोधन की आवश्यकता पड़ती है । इस कार्य के लिये वेधशालायें विनिर्मित होती रही हैं । अभी

भी दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, वनारस, बेंगलूर आदि में पुरातन वेधशालायें जिस–तिस रूप में विद्यमान हैं । नये सिरे से इनका सामयिक एवं सार संक्षेप जैसा स्वरूप शान्ति कुञ्ज में समग्र वेधशाला खड़ी करने के रुप में विनिर्मित किया गया है । इसमें प्राचीन यन्त्र उपकरणों के अतिरिक्त आधुनिक दुर्बीनों का भी प्रयोग अन्तरिक्षीय जाँच पड़ताल के लिये किया जाता है । इस वेधशाला की कसौटी पर कसने के उपरान्त हर वर्ष पंचांग प्रकाशित होता है । साथ ही इस प्रकार का ज्योतिष प्रशिक्षण भी चलता है कि हर स्थान का निजी पलमा के आधार पर पंचांग बनाना हर गणितज्ञ क लिये संभव हो सके । क्षेत्र विशेष पर पड़ने वाले अन्तर्ग्रही प्रभाव को जानने के लिये स्थानीय पंचांग ही सार्थक होता है । स्थानीय पंचांग बनाने की विद्या बताने वाला देश भर का यही एक विद्यालय है ।

इसमें सूर्य मंदिर, ग्रह विद्या की प्रदर्शनी तथा सूर्य शक्ति से ऊर्जा उत्पन्न करने वाले विशालकाय बहुमूल्य संयंत्र भी देखने ही योग्य हैं । शान्तिकुञ्ज की यह प्रक्रिया दर्शकों को आश्चर्यचकित कर देती है ।

शान्तिकुञ्ज के निर्माण में अदृश्य प्रेरणाओं ने काम किया पर उसके शुभारम्भ में माताजी का उत्साह ही अग्रणी रहा । उनने इस आश्रम की रूपरेखा बनायी । प्रवेश करते ही छः वर्ष में सम्पन्न हुआ अखण्ड गायत्री महापुरश्चरण कुमारिकाओं द्वारा सम्पन्न कराया गया । जो कन्यायें इसमें भाग लेने आयीं, उन्हें उच्च शिक्षा उपलब्ध करायी और संगीत का भी अच्छा बोध कराया । अनुष्ठान और कन्या प्रशिक्षण साथ चला ।

महिला जागृति के संबंध में अत्यधिक उत्साह होने के कारण माता जी ने 'महिला जागृति' नामक पत्रिका भी निकाली । वह छः वर्ष तक उन्हीं के तत्वावधान में प्रकाशित होती रही । ग्राहक संख्या भी बीस हजार के करीब पहुँच चुकी थी, पर मिशन के इतने अधिक कार्य उनके सिर पर आ गये कि सम्पादन प्रकाशन का दायित्व वे लगातार न चला सकीं और उसे नयी व्यवस्था बन

पड़ने तक के लिये स्थगित कर दिया गया ।

माताजी ने उन्हीं दिनों एक कन्या विद्यालय भी चलाया । शान्तिकुञ्ज में माताजी का संरक्षण शिक्षण प्राप्त करने पर बच्चियों की जो आशाजनक प्रगति हुई उसे देखते हुए मिशन के कार्यकर्त्ता वर्ग ने अपनी कन्याओं को भी भेजना आरम्भ कर दिया । उनके लिये स्वतंत्र प्रशिक्षण व्यवस्था खड़ी की गयी । संगीत प्रवचन का कौशल भी उसमें सम्मिलित था । जब वे प्रवीण होने लगीं तो एक प्रयोग यह किया गया कि पाँच-पाँच सुयोग्य कन्याओं के जत्थे आश्रम की कारों में बिठाकर शाखा केन्द्रों में महिला जागरण संबंधी अनेकानेक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए महिला सम्मेलन एवं संगठन करने के लिये भेजे गये । उनके कार्य का प्रतिफल आशातीत रहा । उनके भाव भरे संगीत और प्रवचन सुनने के लिये हर जगह हजारों की संख्या में उच्च स्तर का जनसमुदाय एकत्रित होता रहा । जिनने यह उद्‌बोधन सुना वे आश्चर्यचकित हो गये कि यह छोटी आयु की किशोरियाँ बड़े-बड़े अभ्यस्त वक्ताओं से बढ़कर किस प्रकार इतने उच्चकोटि के प्रवचन कर सकी हैं । उनकी शिक्षा और संरक्षिका की हर जगह भूरि-भूरि प्रशंसा हुई ।

इस प्रवास अवधि में ही अनेकों पत्र आते रहे कि इन देवियों में से एक को हमारे घर की लक्ष्मी बनने देने का अनुग्रह किया जाय । कन्या विद्यालय की सभी लड़कियाँ सुयोग्य घरानों में गयीं और वहाँ उनने अपना परिवार स्वर्गोपम बनाकर दिखाया । इन दिनों वह व्यवस्था इसलिये बन्द है कि शान्तिकुञ्ज में नर-नारियों का घमासान रहता है, जबकि कन्या शिक्षण के लिये ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये, जिसमें पुरुषों का आवागमन न रहे । कहीं अन्यत्र ऐसी व्यवस्था बन पड़ेगी तो उसका प्रबन्ध नये सिरे से किया जायेगा । नारी शिक्षा एवं नारी जागरण की आवश्यकता का महत्व कितना बढ़ा-चढ़ा है, यह समझते हुए उसके निमित्त दूसरा उपयुक्त व्यवस्था क्रम माताजी द्वारा सोचा और बनाया जा रहा है ।

शान्तिकुञ्ज के तत्वावधान में एक दूसरा आश्रम ब्रह्मवर्चस्

शोध संस्थान के नाम से चलाया जा रहा है । यह तीन फर्लांग हटकर ठीक गंगा तट पर सप्त सरोवर के निकट है । यह आश्रम तीन मंजिल का है । नीचे की मंजिल में आद्य शक्ति गायत्री के २४ अक्षरों की चौबीस कमरों में चौबीस प्रतिमायें हैं । उनके साथ ही यह उल्लेख भी है कि २४ अवतार, २४ देवता, २४ ऋषि, २४ यंत्र किस प्रकार इन अक्षरों की महाशक्ति के साथ जुड़े हुए हैं । इस मंजिल का ध्यान पूर्वक पर्यवेक्षण करने पर दर्शकों की समझ में गायत्री महाशक्ति की गरिमा का स्वरूप सहज समझ में आता है ।

आश्रम की दूसरी मंजिल पर अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का निर्धारण करने वाली प्रयोगशाला है । इनमें ऐसे बहुमूल्य यंत्र लगे हैं, जो अपने प्रयोजन की आवश्यकताओं को भली प्रकार पूरी कर सकें ।

तीसरी मंजिल में ऐसा पुस्तकालय है जिसमें अभीष्ट अनुसंधान में सहायक सिद्ध हो सकने वाले ग्रन्थ देश-विदेश से मँगाकर २४ कमरों में व्यवस्थित रूप से रखे हुए हैं ।

नयी पीढ़ी प्रत्यक्षवाद एवं बुद्धिवाद को मान्यता देती है । पुरातन काल में शास्त्र प्रमाण एवं आप्त वचन जन साधारण का समाधान कर देते थे । वह श्रद्धा विश्वास का जमाना अब नहीं रहा । अब हर प्रतिपादन के संबंध में तर्क, तथ्य और प्रमाण माँगे जाते हैं । इससे कम में विचारशील वर्ग का समाधान नहीं होता । समय की मांग को ध्यान में रखते हुए यह अन्वेषण अनुसंधान खड़ा किया गया है । इसमें गायत्री की शब्द शक्ति और यज्ञ की आरोग्यवर्धक पर्जन्य वर्षिणी क्षमता की खोज-बीन की जाती है । अग्निहोत्र पर अनुसंधान के लिये आश्रम के मध्य प्रांगण में एक यज्ञशाला परीक्षण के निमित्त बनायी गयी है । इसमें लगे हुए यंत्र उपकरणों को देखकर प्रस्तुत अनुसंधान के प्रति संस्थापकों की सूझबूझ एवं विधि व्यवस्था पर विज्ञान में रुचि रखने वाले मुक्त कण्ठ से सराहना किये बिना नहीं रहते ।

ब्रह्मवर्चस् के शोध कर्त्ताओं में एम. डी., एम. एस., पी. एच. डी., साइंस के पोस्ट ग्रेजुएट, डबल एम. ए. स्तर के लोग हैं । उनने अपनी हजारों रुपये मासिक की आय में ठोकर मारकर इस

महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिये निशुल्क समय दिया है । ग्रन्थों की खोज–बीन के लिये संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी के ग्रेजुएट स्तर के विद्वान कार्यरत हैं । उनके प्रयत्नों से ऐसे तथ्य ज्ञात हुए हैं, जिनके आधार पर गायत्री महामंत्र एवं अग्निहोत्र की जीवनोपयोगी क्षमता का ज्ञान होता है और उसके आधार पर हर दृष्टि से लाभान्वित होने का अवसर मिलता है ।

अध्यात्म सिद्धान्तों को सिद्ध विज्ञान की साक्षी में किया जाय । दोनों को एक–दूसरे का पूरक सहयोगी बनाया जाय । इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये विश्व के कोने–कोने से आस्तिक एवं दार्शनिक समुदाय मांग कर रहा था पर यह समझ में नहीं आता था कि इसे किस प्रकार संभव किया जाय ? इसे देव संस्कृति का सौभाग्य ही कहना चाहिये कि उसके द्वारा इस प्रयोजन की पूर्ति हो रही है । यह प्रयास नैतिकता, आदर्शवादिता एवं परोक्ष जीवन की महान क्षमता को बुद्धि संगत आधार पर सिद्ध एवं प्रत्यक्ष करने जा रहा है । ब्रह्मवर्चस शोध–संस्थान का लक्ष्य एवं प्रयास ऐसा है जिसे अपने ढंग का अनोखा ही कहा जा सकता है ।

व्यापक क्षेत्र में आलोक वितरण

मथुरा, हरिद्वार और औंवलखेड़ा के तीन स्थानों के दो–दो आश्रमों में जो क्रियाकलाप चल रहा है, उसकी चर्चा पिछले पृष्ठों पर हो चुकी है । देखने में यह एक व्यक्ति की हिम्मत, सूझबूझ और पुरुषार्थ परायणता की अनुकृति दीख पड़ती है, पर वस्तुतः बात ऐसी है नहीं । सामान्य स्तर का व्यक्ति न इतने बड़े कार्यों का ढाँचा खड़ा कर सकता है और न उसके लिये प्रचुर मात्रा में साधनों की आवश्यकता की पूर्ति ही । याचना का पल्ला न फैलाने का व्रत लेकर चलने पर तो बात और भी कठिन हो जाती है । यह निर्णय इसलिये किया गया कि व्यक्ति की प्रामाणिकता और प्रखरता यदि विश्वास योग्य हो तो उसके समीप स्वेच्छा सहयोग को दौड़कर आना चाहिये । यदि उसकी याचना

करनी पड़ी और दुत्कार सहने की स्थिति बनती रही तो समझना चाहिये कि अपना ही दाम खोटा रहा । परखने वाले का क्या दोष ? समुद्र में नदियों का, नदियों में खेत–नालों का पानी यदि दौड़ कर आता है तो कोई कारण नहीं कि अध्यात्म का चुम्बकत्व साधन ही नहीं सहयोग भी, सहयोग ही नहीं श्रद्धा–विश्वास को भी अपने तक घसीट न लाये । बात कहने–सुनने में असंभव प्रतीत होती है, पर हाथ कंगन को आरसी क्या ? जिसका मन हो, वह यह जाँच पड़ताल कर सकता है कि यह सब कैसे बन पड़ा और इतने थोड़े समय में घर बैठे इतनी विशालकाय व्यवस्था कैसे बन गयी ? यह और कुछ नहीं मात्र अध्यात्म का चमत्कार है । चमत्कार उन्हें नहीं कहते जिनमें बालों में से बालू निकाली जाती है, हवा में से लौंग–इलायची मंगाई जाती हैं, गुर्गों से अत्युक्तियाँ फैलवाकर जिस–'तिस की जेब काटी जाती है । ऐसे लोगों की कहीं कमी नहीं । वे गाँव–गाँव, नगर–नगर में भरे पड़े हैं और चित्र–विचित्र पाखण्ड रचते रहते हैं ।

वास्तविक अध्यात्म बुद्ध, गाँधी की तरह वातावरण को बदलता है और ऐसे कार्यों की योजना बनाता है जिसके साथ लोकमंगल जुड़ा हुआ हो । आत्म–कल्याण का पुण्य और जन कल्याण का परमार्थ सिद्ध होता रहे । गुरुदेव की अध्यात्म साधना की दिव्य क्षमता की परिणति इसी प्रयोजन के निमित्त हुई है ।

उपरोक्त तीन स्थानों में चल रही गतिविधियों में ही बात समाप्त नही हो जाती वरन् उस आलोक का विस्तार व्यापक क्षेत्र में होता है । प्रज्ञा मिशन की गरिमा को समझने वालों और उसके साथ जुड़ने–घुलने वालों की संख्या ५० लाख है ।

यह समुदाय वह है, जिसने अपने मार्ग दर्शक की भाँति निजी जीवन को परिष्कृत–परिमार्जित किया है । दोष दुर्गुणों को एक–एक करके छोड़ा है, जो परमार्थ के निमित्त लोक मानस के परिष्कार में यथा संभव योगदान देता रहा है । उनका समयदान और अंश दान ही अपने क्षेत्र में प्रकाश उत्पन्न करने में समर्थ बनता जा रहा है ।

देश के कोने-कोने में २४०० प्रज्ञापीठों के नाम से भव्य भवन इसी समुदाय ने बनाये हैं । स्वाध्याय मण्डल, प्रज्ञा संस्थानों के नाम से इन्हीं के प्रायः पन्द्रह हजार संगठन हैं । उनके माध्यम से इन दिनों वातावरण परिशोधन परिवर्तन के लिये प्रतिदिन १४० करोड़ गायत्री जप और २४ लाख गायत्री चालीसा पाठ का पुरश्चरण क्रम चल रहा है । इतनी बड़ी सामूहिक संकल्पित साधना इससे पूर्व कदाचित् ही कभी हुई हो । २० वर्ष की लम्बी अवधि तक नियमित रूप से चलते रहने का कभी कहीं निर्धारण हुआ हो और वह प्रयास परिपूर्ण सफलता के साथ अग्रसर होता रहा हो, ऐसी गाथा इतिहास पुराणों में भी ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती ।

गायत्री यज्ञ के साथ जुड़े युग निर्माण सम्मेलन अब तक हजारों की संख्या में पूरे हुए हैं । गायत्री के माध्यम से सद्ज्ञान और यज्ञ के माध्यम से सत्कर्म की दार्शनिकता हृदयंगम कराई जाती रही । युग निर्माण सम्मेलनों ने आत्म निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण के लिये कोटि-कोटि मानवों को उकसाया । साथ ही नैतिक, बौद्धिक और सामाजिक क्रान्ति के नाम पर अवांछनीयताओं, अनैतिकताओं, मूढ़ मान्यताओं एवं कुप्रचलनों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिये जन-जन को उत्साहित, तत्पर एवं सन्नद्ध किया । इस सुनियोजित लोक शिक्षण की परिणति हाथों-हाथ सामने आती रही । अगणित लोगों ने यज्ञ की साक्षी में अपनी दुर्बलतायें, दुष्प्रवृत्तियाँ संकल्पपूर्वक छोड़ी और उस संकल्प के निर्वाह की अविचलित ठान ठानी, इतना ही नहीं एक-एक दो-दो कर उन सद्गुणों को शपथपूर्वक अपनाया जिनकी उनमें कमी थी । वह व्रत भी प्रायः सभी संकल्पवानों का निभा । कदाचित ही कुछ लोग उस संदर्भ में भूले-भटके हों । जो लड़खड़ाये, वे भी संभल गये और सही राह पर चलते रहे ।

आत्मनिर्माण के अतिरिक्त दूसरा आन्दोलन चलता रहा परिवार निर्माण का । घर के वातावरण को ऐसा बनाने की सीख दी गयी, जिससे अपना घर-आंगन ही स्वर्गोपम बन सके । परिवार

के हर सदस्य के स्वभाव और व्यवहार में श्रमशीलता, मितव्ययिता, सुव्यवस्था, शिष्टता, सहकारिता जैसे पारिवारिक पंचशीलों का गहराई तक समावेश होता रहे । सुसंस्कृत परिवार ही नर-रत्नों की खदान सिद्ध होते रहे हैं । परिवार ही व्यक्ति और समाज की मध्यवर्ती कड़ी हैं । उन्हें समुन्नत एवं सुसंस्कृत बनाने के लिये कोई व्यापक एवं व्यावहारिक आन्दोलन नहीं चला । यह युग निर्माण योजना की ही सूझ-बूझ रही जिसने एक नया क्षेत्र अपनाया और उसमें सुयोग्य नागरिकों की नई फसल को उगाकर दिखाया ।

सामाजिक संगठन एवं सुधार की बातें कई लोग कहते रहे हैं । भाषणों, प्रस्तावों एवं लेखों की भी धूम रही, पर ऐसा कुछ बन नहीं पड़ा, जिससे उसकी परिणति जादुई स्तर की दीख पड़े । खर्चीली शादियाँ हमें दरिद्र और बेईमान बनाती हैं । यह नारा जोर-शोर से लगाया गया और दहेज, धूमधाम एवं बारात के लम्बे-चौड़े स्वरूप को सब ओर से दबोचकर सीमाबद्ध किया गया । आदर्श सादगी के साथ सामूहिक विवाह योजनायें सम्पन्न हुईं । ऐसे विवाहों को स्थानीय दबावों से मुक्त करने के लिये शान्तिकुञ्ज में आदर्श शादियाँ बिना कुछ भी खर्च करने की सुविधा के साथ हर साल बड़ी संख्या में सम्पन्न होती रहीं । अब नये कानून के अनुसार दहेज लेने वालों को कानूनी शिकंजे में कसने और स्त्री धन राशि पर ससुराल वालों को सहमत किया जा रहा है । इसी प्रकार जातिगत ऊँच-नीच भावना के विरुद्ध कारगर संघर्ष छेड़ा गया है । जन-जातियों के साथ घनिष्ठता स्थापित करके उन्हें समाज की प्रमुख धारा में जुड़ने के लिये सहमत किया गया है ।

मृतक भोज, भिक्षा व्यवसाय, पर्दाप्रथा, बालविवाह, अनमेल विवाह, जेवर, फैशन परस्ती, नशेबाजी आदि के विरुद्ध जनमत बनाया और उन्हें रोका गया है । दो सन्तान से अधिक कोई दम्पत्ति प्रजनन न करे, इस संदर्भ में लाभ-हानि को इस प्रकार बताया गया है कि उस परामर्श को प्रत्येक विचारशील द्वारा अपनाया जा सके ।

प्रौढ़ शिक्षा और व्यायामशाला संस्थान के लिये कितने ही लोकसेवी प्रशिक्षक निकाले गये हैं । वृक्षारोपण, घरेलू शाक वाटिका, जड़ी–बूटी उद्यान लगाने के लिये लोगों को उत्साहित, सहमत और बाधित किया गया है । इस प्रकार समाज की अभिनव संरचना के लिये कुछ उठा नहीं रखा गया है ।

आज से छः वर्ष पूर्व हीरक जयन्ती पर शान्तिकुञ्ज से दो नये कार्य आरंभ किये गये । पहला प्रज्ञा प्रशिक्षण खुले विश्वविद्यालय योजना स्तर का । इसमें एक वर्षीय पाठ्यक्रम है । जीवन निर्माण, परिवार निर्माण और समाज निर्माण का सुनियोजित पाठ्यक्रम है । साथ ही सुगम संगीत का अभ्यास और भाषण कला का अनुभव कराने की भी शिक्षा सम्मिलित रहेगी । उद्देश्य यह है कि स्थानीय स्तर पर चरित्र निष्ठा और समाज सेवियों की बहुलता हर साल बढ़ती रहे ।

दूसरा कार्य था वीडियो फिल्मों के माध्यम से रचनात्मक सुधारात्मक कार्यक्रमों का स्वरूप और सत्परिणाम जन–जन को सुझाना । इसके लिये आश्रम की तीस जीप गाड़ियाँ निरन्तर देश भर में भ्रमण करती रहती हैं । दो वीडियो रथ भी कार्यक्षेत्र में सक्रिय किये गये हैं । सभी भाषाई क्षेत्रों के लिये यह योजना तैयार की गयी और उसका प्रकाश विस्तार विशेष रूप से अशिक्षित ग्रामवासियों तक पहुँचाया जा रहा है ।

प्रवासी भारतीयों से अब तक कोई वैसी योजना कार्यान्वित नहीं हुई थी जैसी कि अमेरिका, योरोप में ईसाई मिशनरी अपनी विचारधारा को पिछड़े क्षेत्रों में पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं । भारत के साधुओं, धर्म प्रचारकों में से अधिकतर किसी बहाने चंदा इकट्ठा करते अथवा 'योग' के नाम पर लोगों को बहकाते और लूटते भर रहे हैं । इस प्रवाह से सर्वथा हटकर प्रज्ञा मिशन ने प्रवासी भारतीयों में ऐसी प्रेरणा भरने के लिये प्रयास किया है, जिसके अन्तर्गत वे अपनी सांस्कृतिक परम्परा को, देव भाषा को विस्मरण न कर बैठें । प्रायः ७४ देशों में ऐसे प्रचार केन्द्रों की स्थापना की गयी है और उन्हें इसके लिये संगठित होने

तथा योजना बद्ध रूप से रचनात्मक कार्यों की स्थापना के लिये कहा गया है ।

इस स्तर के प्रयासों को प्रोत्साहन देने के लिये देश–विदेश में मिशन के अनेक कार्यकर्त्ता कटिबद्ध हैं । वानप्रस्थ परम्परा एक प्रकार से लुप्त ही हो गयी थी । गृहस्थ, ब्राह्मण अपने निकटवर्ती क्षेत्र में और विरक्त वानप्रस्थी व्यापक जन जागरण का कार्य करते थे । इसी से सर्वत्र चरित्रनिष्ठा और लोक सेवा का वातावरण बना रहता था । अब वे परम्परायें एक प्रकार से समाप्त प्रायः ही हो गयीं । ब्राह्मण, वंश और साधु वेष की आड़ में लाखों लोग अभी भी धन और सम्पत्ति बटोरते देखे जाते हैं । इसलिये प्रज्ञा अभियान ने नये स्तर के लोकसेवी हर वर्ण एवं क्षेत्र से विनिर्मित–प्रशिक्षित किये हैं । चरित्रवान, प्रतिभावानों का एक बड़ा समुदाय लोक सेवी के रूप में कार्य क्षेत्र में उतरा है । इसे पुरातन साधु–ब्राह्मण परम्परा का पुनर्जीवन कहा जा सकता है ।

बोओ और काटो का सुनिश्चित सिद्धान्त

अध्यात्म विज्ञान का एक सुनिश्चित सिद्धान्त है–'बोओ और काटो'। यह सभी महत्वपूर्ण विषयों पर समान रूप से लागू होता है । किसान बीज बोता, सींचता–संजोता और मूल्यवान फसल काटता है । विद्यार्थी भी अपना समय, श्रम एवं धन लम्बे समय तक अध्ययन में खर्च करता है और समयानुसार विद्वान्, पदाधिकारी बनता है । व्यवसायी पूँजी जुटाता है, उद्योग का समस्त ढाँचा खड़ा करता है और चल पड़ने पर लाभांश संचित करके समृद्ध बनता है । यही उपक्रम आध्यात्मिक प्रगति के संबंध में भी लागू होता है । साधना से सिद्धि का सिद्धान्त सही है, पर उनके साथ यह सिद्धान्त भी अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है कि आत्म–संयम और पुरुषार्थ के भरे–पूरे अनुदान भी इस हेतु समर्पित करने पड़ते हैं । जीवन क्रम को आदर्शों से ओत–प्रोत किये बिना, बहिरंग और अन्तरंग में उत्कृष्टता का समावेश किये बिना कोई व्यक्ति

ऐसी सिद्धि सफलता अर्जित नहीं कर सकता, जिसे चमत्कारी, प्रेरणाप्रद एवं अभिनन्दनीय कहा जा सके ।

परम पूज्य गुरुदेव ने इस तथ्य को आरंभ में ही हृदयंगम कर लिया था और उसके लिये योजनाबद्ध रूप से क्रमिक विकास करते रहने की तैयारी भी । दूसरे लोग इस संदर्भ में कोई ठोस प्रयास करने से कतराते हैं और सस्ती टंट–घंट के सहारे वैतरणी पार करते हुए स्वर्ग लोक जैसा आनन्द इसी जीवन में प्राप्त करना चाहते हैं, बिना आधार के दिवास्वप्न देखते रहते हैं । सुदृढ़ आधार अपनाये बिना कोई उच्चस्तरीय सफलता कैसे मिले ? यही कारण है कि अधिकांश लोग अपनी असफलता का रोना रोते रहते हैं और या तो निराश हो बैठते हैं या फिर नकटा सम्प्रदाय की तरह ढोंग रचकर झूठ–मूठ की सिद्धाई बघारने लगते हैं ।

पूज्य गुरुदेव को अध्यात्म विज्ञान की तह तक जाना था, इसलिये उन्होंने राजयोग, हठयोग, मंत्रयोग, लययोग, कुण्डलिनी योग, ज्ञान योग, कर्मयोग, भक्ति योग आदि सभी भारतीय और अभारतीय योग साधनाओं का गंभीर अध्ययन, पर्यवेक्षण किया और पाया कि यह सभी मार्ग साधक को प्रथम चरण–आत्म–परिष्कार के रूप में उठाने का मार्गदर्शन करते हैं । उपचार, विधान इसके उपरान्त ही बन पड़ते हैं । जो लोग अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार का स्तर तो नीचा रखते हैं, पर उछलकर कुण्डलिनी जागरण, ईश्वर–दर्शन, शक्तिपात आदि की लालसायें संजोते हैं, उनकी बालक्रीड़ा उसी प्रकार निष्फल होती है, जैसे कोई अबोध बालक वर्णमाला सीखने की उपेक्षा करे, एम. ए. का कोर्स तुर्त–फुर्त पूरा कर लेने का हट करे और अपनी ही बात पर अड़कर मचलने लगे । इतने पर भी इसकी इच्छानुसार बात बनती नहीं ।

पूज्य गुरुदेव ने अपने मार्गदर्शक का आदेश शिरोधार्य करते हुए यही निश्चय किया कि अपना समूचा संग्रहीत साधन बीज रूप से परमार्थ प्रयोजन के लिये बो दिया जाय, ताकि वह हजार गुना होकर वापस लौट सके । मक्का, बाजरा, ज्वार के खेतों में यही होता है, एक बीज अपने पौधे पर हजार नये दाने उत्पन्न करता

है । आम, जामुन आदि वृक्षों में ही यह प्रक्रिया उत्पन्न होती है कि वे एक बीज से पेड़ बनते हैं, पर हर वर्ष वे अपने फलों से हजारों नये बीज उत्पन्न करते रहते हैं । सुदामा के तंदुल, शबरी के बेर आरंभिक अनुदान के रूप में भेंट किये गये थे, किन्तु कालान्तर में वे असंख्य गुने होकर लौटे और दाताओं को कृत-कृत्य बनाकर रहे ।

गुरुदेव ने भी इसी नीति को अपनाया । उनने तपश्चर्यायें, योग साधनायें भी कम नहीं की हैं । पर उनमें हाथ डालने के साथ-साथ 'बोया-काटा' वाली नीति को अपनाये रखा, दोनों को अलग करके एक पहिये की गाड़ी चलाने, एक हाथ से ताली बजाने की तरह उन्होंने हवाई कुलाचें भरने की मूर्खता नहीं की ।

हर किसी के पास कुछ अपना कमाया होता है कुछ ईश्वर का दिया हुआ । ईश्वर प्रदत्त साधनों की दृष्टि से सबको समान मिला है । स्व-उपार्जन में ही न्यूनाधिकता पायी जाती है । समय, श्रम, प्रतिभा, विवेक यह ईश्वर प्रदत्त हैं और धन साधन अपने पुरुषार्थ का प्रतिफल । इसी समूचे वैभव को विश्व मानव के लिये उसकी सर्वोपरि सेवा, विचार परिष्कार के लिये नियोजित किया । साथ ही यह भी ध्यान रखा कि पिछड़े वर्ग को उठाने में, आगे बढ़ने वालों को सहारा देने में तथा पीड़ितों को प्रत्यक्ष सहायता देकर उनके आँसू पोंछने में कुछ उठा न रखा जाय ।

पूज्य गुरुदेव की जो सेवा-'साधना है, वह प्रत्यक्ष है । सहायता प्राप्तों ने आप-बीती को अनायास ही एक जीभ से सौ कानों को परिचित कराया है और वह विवरण-प्रकरण अब 'प्रायः सर्वविदित हो गया है । यदि ऐसी सेवा-साधना से, त्याग-परमार्थ से विरत रहा गया होता और माला घुमा कर सस्ते मोल में स्वर्ग मुक्ति, सिद्धि, शान्ति, समृद्धि प्राप्त करने का ठाठ रोपा होता, तो उन्हें भी तथाकथित साधकों की तरह नितान्त खाली हाथ रहना और उपहासास्पद बनना पड़ता । तप साधना के निजी प्रयासों के अतिरिक्त पुरातन साधु-ब्राह्मण की परम्परा अपनाई और साधना की तरह लोक-सेवा में भी तत्परता पूर्वक संलग्न रहे । वे रात में अपनी

नियत साधना से निपट लेते थे, और सूर्य निकलने से लेकर सूर्यास्त तक सेवा–साधना में लगे रहते थे । यही क्रम आरम्भ से लेकर विगत वर्ष महाप्रयाण तक चलता रहा । लेखनी, वाणी द्वारा लेखन एवं कथन के अतिरिक्त प्रत्यक्ष अनुदान की नीति भी उनने अपनाई और उसके प्रत्यक्ष परिणाम 'नकद धर्म' की तरह हाथों–हाथ देखे ।

उनने स्वयं तो कुछ कमाया नहीं । ५५ वर्ष की आयु से ही जब साधनारत हो गये, तो कमाते कहाँ से ? पर पूर्वजों की उत्तराधिकार में छोड़ी गयी सम्पदा इतनी थी कि उसका समर्पण भी महत्वपूर्ण प्रतिफल उत्पन्न कर सका ।

खुद काश्त की जमीन बेचकर आँवलखेड़ा का विद्यालय बना । जमींदारी उन्मूलन से मिली राशि को गायत्री तपोभूमि निर्माण में लगाया गया । बच्चों की पढ़ाई आदि में जो खर्च हुआ था, उसे वापस लौटाकर माताजी ने शान्तिकुञ्ज हरिद्वार की जमीन खरीदी । माताजी के जेवर भी इसी हेतु बिके और लगे । अब वन्दनीया माताजी के पास निजी सम्पदा के रूप में एक कानी–कौड़ी भी नहीं है । पेट भरने और तन ढकने भर की सुविधा वे मिशन से प्राप्त करती हैं । यह अपरिग्रह, सर्वमेध उन्हें लोभ–लिप्सा से छुट्टी दिला सका । मोह निजी परिवार से मुक्त हुआ, तो ही गायत्री परिवार के विशालकाय परिकर में विस्तृत हो सका और लाखों को सघन स्नेह सूत्र में इस प्रकार बाँध सका, जिसके बन्धन कोई इच्छा करने पर भी तोड़ नहीं सकता । इसे संकीर्णता की व्यापकता में परिणति ही कहा जा सकता है । पूर्वजों द्वारा मिली सम्पदा भी उनके पूर्वजन्मों की कमाई ही थी । गीता की वह उक्ति प्रत्यक्ष सिद्ध हुई, जिसमें कहा गया था कि योग मार्ग की अपूर्णता में शरीर छोड़ने पर अगला जन्म साधन सम्पन्न परिवारों में होता है । उपयुक्त वातावरण और वैभव उन्हें जन्मजात रूप से ही उपलब्ध हुआ । उपनयन और गायत्री मन्त्र की दीक्षा उन्हें महामना मालवीय जी से मिली । पिताजी संस्कृत के उद्भट विद्वान और अनेक राज दरबारों में उन्हें राजगुरु का स्थान प्राप्त था । उनने अपनी भावना और संस्कृति इस होनहार बालक को आरम्भ से ही प्रदान की, जिसे उन्होंने पूरी तरह

लोकमंगल के लिये अर्पित कर सच्चा पितृ श्राद्ध किया ।

निजी अनुदान से आरंभ हुई उदारता का ही यह प्रतिफल था, कि भावनाशीलों का अपरिमित स्वेच्छा सहयोग उन पर बरसता रहा, और तीन स्थानों की छः इमारतें तथा २४०० प्रज्ञापीठों के निर्माण में लगी करोड़ों की राशि अनायास ही उपलब्ध होती रही । जिस घर में जन्में और विवाहे थे, उसमें अब मात्र पाँच वृक्ष लगा दिये गये हैं, ताकि व्यक्तिगत अधिकार जैसी कोई बात कहीं भी न दीख पड़े ।

अब श्रम और समय की बात आती है–वह सारा ही स्वतंत्रता संग्राम में जेल काटने, साहित्य सृजन में संलग्न रहने, मिशन का इतना बड़ा ढाँचा खड़ा करने में लग गया, जिसके आधार पर कोटि–कोटि मनुष्यों को अपने जीवन में संयमशीलता एवं उदारता भरने का अवसर मिलता रहा है । युग निर्माण का वातावरण बन रहा है, विचार क्रान्ति अभियान विश्व व्यापी होने जा रहा है और अगणित रचनात्मक क्रिया–कलापों का सुविस्तृत तारतम्य विनिर्मित होता चला जा रहा है । इसे सूत्र संचालक के समय दान की प्रतिक्रिया कहा जाय, तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी ।

गुरुदेव में माता जी ने प्यार बिखेरा और श्रद्धा बटोरी । उनके सम्पर्क में लोग मात्र ज्ञान प्राप्ति के लिये ही नहीं आते, सेवा–साधनाओं का मार्गदर्शन प्राप्त करना भर उद्देश्य नहीं होता, वरन् वे अपनी निजी कठिनाइयों, विपत्तियों और प्रगति की आकांक्षाओं में उनका प्रत्यक्ष अनुदान भी चाहते हैं । प्यार का प्रमाण देने के अतिरिक्त और किसी रूप में नहीं दिया जा सकता । उसमें लेने की गुञ्जायश होती ही नहीं । भक्ति योग की साधना दूसरों के आँसू पोंछने और रोतों को हँसता हुआ लौटाने के रूप में ही वह योग सधता है । नवधा भक्ति के नाम पर चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, चढ़ाने वाले लोग दूसरे ही होते हैं ।

गुरुदेव के अनुग्रह से जितने लोगों ने अपने प्रत्यक्ष जीवन में जो सहायतायें प्राप्त की हैं, इनका लेखा–जोखा यदि प्रस्तुत किया जाय, तो एक महापुराण ही बन सकता है । अब से लगभग ३५

वर्ष पूर्व इस प्रकार के उल्लेखों की एक "गायत्री के प्रत्यक्ष चमत्कार" पुस्तक छपी थी । विगत वर्ष पूज्य गुरुदेव की स्मृति में श्रद्धांजलि स्वरूप एक विशाल ग्रन्थ अखण्ड ज्योति पत्रिका विशेषांक के रूप में निकाला गया था, जिसमें इन सभी का विस्तृत विवरण है । वस्तुतः कोटि-कोटि मानवों की श्रद्धा उन्हें मात्र इसलिये नहीं मिली कि उन्हें सद्ज्ञान का सन्मार्ग का प्रशिक्षण मिला, वरन् वस्तुतः उसका परोक्ष आधार यह है कि जो किसी उचित आकांक्षा को लेकर उनके द्वार पर आया, वह खाली नहीं गया । प्याऊ पर से कोई प्यासा नहीं लौटता । अस्पताल में किसी भी कारण आहत हुए पीड़ित को दुत्कारा नहीं जाता । इस प्रकार केन्द्र ने भी अपने को लुटाने और दूसरों को खिलाने में कमी नहीं रहने दी है । प्रज्ञा परिवार के इतने विस्तार और सहयोग में इस कारण भी असधारण अभिवृद्धि हुई है ।

समय दान की परिणिति यह हुई कि उनने ८० वर्ष के जीवन में ८०० वर्ष जितना काम कर दिखाया । पाँच व्यक्ति मिलकर जितना काम कर सकते थे, उतना उन अकेले से बन पड़ा । श्रमदान और समयदान संसार के लिये अधिक उपलब्धियाँ छोड़ सका, जिन्हें हजारों लाखों वर्षों तक भुलाया न जा सकेगा ।

भावना और आकांक्षाओं को, गतिविधियों को सर्वतोभावेन जनता जनार्दन के लिये समर्पित कर देने का प्रतिफल तीन रूपों में उपलब्ध हुआ । एक अन्तराल में-मर्मस्थल में असाधारण संतोष और उल्लास । दूसरा कोटि-कोटि मानवों द्वारा सम्मान और सहयोग का प्रतिदान । तीसरा दैवी अनुग्रह का अजस्र अभिवर्षण । यदि ऐसा न हुआ होता, तो विघ्न, व्यतिरेक, आक्रमण, असमंजस ही उनकी गतिविधियों में अवरोध उत्पन्न कर देते और जो हो सका उसका बन पड़ना असंभव कर देते । वस्तुतः दैवी अनुग्रह ही उनके पीछे था, जिसके सहारे वे अपने इष्ट देव को बॉडीगार्ड की तरह, मार्गदर्शक की तरह, सहायता बरसाने वाले इन्दु-कुबेर की तरह हर घड़ी अपने आगे-पीछे और चारों ओर हर समय विद्यमान देखते रहे ।

परिवर्तनकारी
प्रचण्ड महाकाली का अवतरण

समय की दो माँगे इन दिनों अत्यन्त प्रबल हो गयी हैं, जिनमें से एक है महा विनाश के छाये हुए घटाटोप को निरस्त करना और दूसरा है, युग परिवर्तन युग सृजन की आशा को सार्थक कर दिखाना । इन कार्यों को लंकादहन और राम राज्य संस्थापना के समतुल्य कहा जाय तो भी कुछ अत्युक्ति न होगी ।

इन दिनों महाप्रलय जैसी कितनी ही दुर्धर्ष परिस्थितियाँ प्रबल हो रही हैं, जिनमें से एक है महायुद्ध की स्टार वार की सम्भावना, जो कभी कार्यान्वित हो चली, तो इस पृथ्वी पर से जीवन का अन्त ही नहीं हो जायेगा, वह जीवधारियों के रहने योग्य नहीं रह जायेगी । इतना ही नहीं यह भी हो सकता है कि समस्त ग्रह नक्षत्रों में अद्भुत समझी जाने वाली यह पृथ्वी चूर-चूर होकर उस तरह टुकड़े-टुकड़े होकर उड़ जायेगी जैसे कि मंगल और बृहस्पति के बीच में किसी टूटे ग्रह का कचूमर छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में भ्रमण करता रहता है । अणु युद्ध का दैत्य पौराणिक दैत्यों की तुलना में सबके समन्वय जितना भयंकर है । इस विभीषिका से विचारशीलों में से प्रत्येक का दिल धड़क रहा है । महा प्रलय की तलवार कच्चे धागे से बँधी हुई लटक रही है । आशंका है कि वह न जाने कब टूट पड़े और धरातल को धुएँ में बदल दे । इसका एक छोटा नमूना हम विगत दिनों खाड़ी युद्ध की विभीषिका के रूप में देख चुके हैं ।

दूसरी विभीषिका है-पर्यावरण प्रदूषण । औद्योगिक सभ्यता ने विषैले धुएँ से आसमान को भर दिया है और साँस लेना तक खतरनाक हो गया है । ऋदी सरोवर से लेकर समुद्र तक में मिल कारखानों से उत्पन्न प्रदूषण भर गया है और शुद्ध पेयजल का मिलना कितना दुर्लभ हो रहा है । रासायनिक खादों और कीटनाशक रसायनों की भरमार से खाद्य पदार्थ विषैले बनते जा रहे हैं । भू-गर्भ के अत्यधिक दोहन से संचित धातु भण्डार

और खनिज तेलों की पूँजी समाप्त होती जा रही है । फलतः भूकम्प जैसी दुर्घटनाओं का दौर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गया है ।

तीसरा संकट है–विकिरण का । युद्ध के लिये तथा विद्युत उत्पादन के निमित्त अणुशक्ति का विस्तार हो रहा है । उसके प्रयोग परीक्षण एवं कार्यान्वयन से रेडियो विकिरण की असाधारण वृद्धि हो रही है । अब तक जो इस दिशा में हो चुका है और अगले दिनों जो होने वाला है उन सब की परिणिति अन्तरिक्ष को ऐसी रेडियो धर्मिता से भर कर रहेगी जिसमें जीवित मनुष्य कैंसर जैसे चित्र–विचित्र रोगों से संतप्त हों और नयी पीढ़ियाँ अपंग अविकसित स्तर की पैदा हों । ऐसी स्थिति में सम्पन्नता का सुख प्राप्त करना तो दूर पीड़ा, व्यथा, शिथिलता, अपंगता, प्रकृति की प्रतिकूलता जैसे अनेकानेक संकटों से भूलोक के घिर जाने का खतरा है ।

चौथा संकट है–जनसंख्या की तूफानी वृद्धि का । दो हजार वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर मात्र ५५ करोड़ जनसंख्या थी । चक्र वृद्धि दर से बढ़ते–बढ़ते वह ५०० करोड़ हो गयी है । अगले दिनों आधी शताब्दी के भीतर उसके दूनी १००० करोड़ हो जाने की सम्भावना है । इतने लोगों के लिये अन्न, जल, शिक्षा, निवास, चिकित्सा, वाहन जैसे आवश्यक साधनों का जुट सकना किसी प्रकार सम्भव न रहेगा । प्रगति के लिये किये गये प्रयास उतनी तेजी से न दौड़ सकेंगे, जिससे बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकतायें पूरी हो सकें । जब लोगों की सड़कों पर चलने तक की सुविधा को बढ़ी हुई भीड़ छीन लेगी, तो उसे टिड्डी दल की इस दुर्गति के साथ धीमी आत्महत्या के लिये विवश होना पड़ेगा, इसका अनुमान लगाया जा सकना किसी भी बुद्धिमान के लिये सरल नहीं हो रहा हैं और बाढ़ बेतरह बढ़ती जा रही है ।

पाँचवां संकट है––मानवी गरिमा का असाधारण अधोपतन । दृष्टिकोण, चिन्तन, चरित्र एवं व्यवहार में पशु–पिशाच स्तर की निकृष्टता का बढता समावेश । मर्यादायें और वर्जनायें टूट रही हैं । पारस्परिक सद्भाव, सहयोग और विश्वास की दिन–दिन कमी

आती जा रही है । लगता है सुविधा और सभ्यता के प्रचुर साधन होते हुए भी हम स्तर की दृष्टि से आदिम युग की ओर लौट रहे हैं । ऐसी दशा में दिखावटी प्रगति का ढकोसला खड़ा रहने पर भी भीतर का खोखलापन भविष्य को अन्धकारमय बनाकर ही रहेगा ।

यह पाँचों विभीषिकायें ऐसी हैं, जिनमें से एक ही सर्वनाश के लिये पर्याप्त है । फिर पाँचों का एक साथ संयुक्त आक्रमण होने पर तो भविष्य की स्थिति कितनी डरावनी हो सकती है इसका अनुमान लगाने में दो मत नहीं हो सकते हैं ।

इन पाँचों मोर्चों पर एक साथ जूझने और उन्हें निरस्त करने के लिये कितनी प्रचण्ड शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी इसे समझना कठिन नहीं है । इस प्रयास में भौतिक प्रयत्न सफल नहीं हो सकते । कोई आध्यात्मिक प्रचण्ड क्षमता ऐसी अवतरित होनी चाहिये जिसे महाकाली की उपमा दी जा सके । संकट को निरस्त करने के लिये इन्द्र वज्र जैसा अति मानवी अस्त्र चाहिये जिसके लिये दधीचि की तपोपूत अस्थियों से कम की साधन सामग्री नहीं चाहिये । इसे कौन प्रस्तुत करे ? इसी प्रयोजन की पूर्ति के लिये परम पूज्य गुरुदेव की सूक्ष्म व कारण शरीर की सत्ता अन्यान्य ऋषि सत्ताओं के साथ मिलकर दुर्गम हिमालय में सक्रिय है । स्थूल शरीर से वे आजीवन तप करते रहे । अब ब्रह्मलीन होने के बाद उनकी शक्ति कई गुना व्यापक हुई है व उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप हलचलों को अगले दिनों देखा जा सकता है ।

पाँच शक्तियाँ ऐसी हैं, जो सृजन प्रयोजन में बढ़-चढ़कर योगदान दे सकती हैं, पर आज तो वे प्रसुप्त स्थिति में पड़ी हैं, विपरीत दिशा में चल रही हैं, दिग्भ्रान्त भी हो रही है और भटकाव में ऐसा कुछ कर रही है जिससे सृजन की अपेक्षा विनाश को ही सहायता मिले । इन्हें सुधारा जाना है, राह पर लाया जाना है । उल्टे को उलटकर सीधा किया जाना है । इन सृजन शक्तियों को अभी से मोड़-मरोड़ कर उस दिशा धारा, रीति-नीति को अपनाने के लिये बाधित किया जाना है, जिससे विश्व उद्यान को चन्दन वन जैसी उपमा मिल सके । इसी धरती को

स्वर्गादपिगरीयसी होने का श्रेय मिल सके । गुरुदेव की सूक्ष्म सत्ता उस रूप से भी सक्रिय है कि ध्वंस को रोकने के अतिरिक्त सृजन की शक्तियों को नव सृजन के लिये नियोजित करने के लिये झकझोरा घसीटा और बाधित किया जाय ।

शक्ति सामर्थ्य के स्रोत पाँच है–एक–शासन । दूसरा–धर्म । तीसरा–अर्थ । चौथा–ज्ञान । पाँचवा–कौशल । अब तक जो कुछ भी सृजन परिवर्तन, अभिवर्धन उत्पन्न हुआ है, उनमें इन पाँचों में से किसी न किसी की भूमिका प्रमुख रही है आगे भी रहेगी ही ।

शासन तन्त्र के सूत्र संचालकों की दुर्बुद्धि से सृजन में काम आने वाले साधन ध्वंस की वेदी पर बलि चढ़ाये जा रहे हैं । युद्धोन्माद उन्हीं पर चढ़ा है । निरीह जनता तो विश्व भर की उसके विपरीत है, पर यही सांड हैं, जो आपस में टकराते और हरी–भरी फसलों को तोड़–फोड़ कर बर्बादी उत्पन्न करते हैं । जिनका कौशल बुद्धिबल, विज्ञानबल, जनबल, धनबल, युद्ध की तैयारियों में खप जाता है उसे रोका जा सके और बदलकर सृजन प्रयोजनों में निरत किया जा सके, तो संसार से गरीबी, बेकारी, भुखमरी, अशिक्षा, रुग्णता, अपराधी दुष्प्रवृत्तियों को एक वर्ष में समाप्त किया जा सकता है । सतयुग का वातावरण लौट सकता है और सर्वत्र प्रगति, समृद्धि और स्नेह भरी सहकारिता का वातावरण उगा और उठा हुआ दृष्टिगोचर हो सकता है ।

दूसरा आधार है–धर्म । धर्म का तात्पर्य है चेतना का उत्कृष्टता के साथ गठबन्धन । मानवी गरिमा का जन–जन के मन में प्रतिष्ठापन । भ्रम और विग्रह तो संकीर्णतावादी दुराग्रही सम्प्रदाय ही फैलाते हैं । आज धर्म को दबोचकर सम्प्रदाय उसकी छाती पर चढ़ बैठे हैं । इस स्थिति को बदला जाना है । जन–जन को समझाया जाना है कि मन की गरिमा का पक्षधर उत्कृष्टता एवं आदर्शवादिता का समन्वय ही धर्म है । वह कर्मकाण्डों, कीर्तनों तक सीमित नहीं है वरन् लेखनी, वाणी, कला और प्रभावोत्पादक सृजन कृत्य भी उसमें सम्मिलित है ।

साहित्य, फिल्म, गायन, अभिनय और प्रवचन, सम्मेलन क सभी

प्रयोजनों को धार्मिकता का वातावरण बनाना था । लोकमानस को उदात्त दृष्टिकोण से अवगत एवं अभ्यस्त करना था । पर हो रहा है दायित्व के सर्वथा विपरीत । फलतः इन्हीं वर्गों ने जनमानस को पतनोन्मुख बनाया है । उसकी प्रतिक्रिया भी अपराध अभिवर्धन में होनी चाहिये थी, हो भी रही है । इन क्षेत्रों से सम्हलने के लिये कहा जायेगा । इन्जन को पटरी पर चलाने की स्थिति बनायी जायेगी अन्यथा उसका लुढ़क जाना तो भयंकर संकट उत्पन्न कर सकता है ।

तीसरा स्रोत है–धन । धन के बदले श्रम खरीदा जा सकता है । साधन जुटाये जा सकते हैं और विशाल तंत्र एवं अभियान खड़े किये जा सकते हैं । पूँजी को वासना, तृष्णा, संग्रह और दुर्व्यसनों से भी खर्च किया जा सकता है । अधिक धनी बनने की लिप्सा में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष शोषण किया जा सकता है । अनाचारों को प्रोत्साहन भी । पर यदि उसका सदुपयोग किया जा सके, तो पूँजी के बल पर सृजनात्मक प्रयोजनों के निमित्त एक से एक बढ़कर उत्कर्ष संवर्धक प्रयासों को प्राण दिये जा सकते हैं । अगले दिनों या तो धन व्यक्ति के हाथों से छीनकर समाज, शासन के हाथों में केन्द्रित होगा अथवा जिनके पास भी निर्वाह से अधिक पूँजी है उन्हें सार्वजनिक जीवन में सत्प्रवृत्ति संवर्धन में लगाना होगा । न लगायेंगे तो उन्हें इतराने की अपेक्षा सिर धुन–धुनकर अपनी क्षुद्रता कि लिये पछताना पड़ेगा ।

चौथा साधन है–ज्ञान प्रशिक्षण । इस आधार पर व्यक्तियों को परिष्कृत और समाजनिष्ठ बनाना पूर्णतया संभव है । श्रेष्ठ नागरिक एवं पुरुष जिस खदान से निकलते हैं उसे विद्यालयों, पुस्तकालयों के प्रवचन परामर्श के माध्यम से लोकमानस को प्रभावित करने वाली शिक्षा ही समझा जाना चाहिये । आज यह तंत्र निरुद्देश्य झाड़–झंखाड़ों में भटक रहा है । अगले दिनों सरकारी शिक्षा का भी कायाकल्प होगा और जन स्तर पर विज्ञजनों द्वारा संचालित समानान्तर शिक्षा का व्यापक तंत्र खड़ा होगा, जो सरकारी शिक्षा में रहने वाली त्रुटियों को अपने बलबूते सामान्य कर सके । आवश्यक नहीं कि शिक्षा के लिये पूरी तरह

सरकार पर ही आश्रित रहा जाय । प्रौढ़ शिक्षा, नैतिक शिक्षा, व्यावहारिक कुशलता, शालीनता, गृह उद्योग, व्यवसाय जैसे विषयों की शिक्षा निजी स्तर पर दी जा सकती है । नौकरी के लिये पढ़ाई जाने वाली मान्यता में आमूल-चूल परिवर्तन किया जा सकता है और शिक्षा सुसंस्कारिता के लिये, सुव्यवस्था के लिये नीति अपनाने वाली बनाई जा सकती है । इसके लिये सरकारी और गैर सरकारी दोनों ही प्रयासों को उपयोगी भूमिका निबाहने के लिये सहमत सक्षम बनाना पड़ेगा ।

पाँचवीं शक्ति है-कौशल । इसे विशेषता भी कहा जा सकता है । वैज्ञानिक, शिल्पी, चिकित्सक, अन्वेषक, कलाकार स्तर की प्रतिभाओं से उनकी कौशल प्रतिभा का परिचय मिलता है । प्रतिभाओं का राष्ट्रीयकरण होना चाहिये । उन्हें अपनी विशिष्टता से जनता को चमत्कृत करके विपुल स्वार्थ साधन की छूट नहीं मिलती थी । मध्यकाल में नगर की सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी नागरिकों की कला एवं सौन्दर्य पिपासा को तृप्त करती थी और नगर वधू की पदवी प्राप्त करती थी । कौशल को उच्छृंखल नहीं होना चाहिये । उसे छुट्टल नहीं छोड़ा जाना चाहिये । आदर्शों की रस्सियों में कसा जाना चाहिये और मनमर्जी नहीं बरतने दी जानी चाहिये । यदि ऐसा रहा होता तो वैज्ञानिकों को परमाणु आयुधों की मृत्यु गैसों को बनाने की सुविधा कैसे मिलती ? गायक कामुकता को भड़काने में सहायक क्यों होते ? कला का पर्याय पाशविकता या उत्तेजना क्यों बनता ? साहित्यकारों की कलम ऐसा क्यों लिखती जो लोकमानस को उद्धत बनाती है । यदि इन वर्गों ने मिलकर शान्ति, समृद्धि और श्रेष्ठता के पक्ष में काम किया होता तो स्थिति उससे सर्वथा विपरीत होती जैसी कि आज है । तब इस वर्ग को देवताओं जैसा सम्मान मिलता ।

उल्टी राह चलने वालों की गलती बताने और सही मार्ग पर चलने का निवेदन करने पर वह इसमें अपना अपमान अनुभव करता है और सर्वसत्ता का दावा करते हुए अपनी हठवादिता को सुधारने के लिये सहमत नहीं होता । आज प्रेस, अखबार फिल्म

जैसे उद्योग लोकमानस को दिशा देने का नेतृत्व कर रहे हैं । राजा के अनुरूप प्रजा बनती हो सो ही नहीं वरन् नेता के अनुरूप उनकी प्रभाव परिधि में आने वाले भी लोगों को अपने साथ या पीछे चलने को बाधित किये हैं । प्रभावशाली वक्ताओं ने जनता को उठाया भी है और गिराया भी । इन प्रतिभाओं पर अंकुश लगाना ही चाहिये, कानून उन्हें बाधित कर सके । समाज की माँग उन्हें प्रभावित न करे तो ऐसी सूक्ष्म अध्यात्म शक्ति उभरनी चाहिये जो उनके अन्तराल को मरोड़ दे । वाल्मीकि, अंगुलिमाल, अशोक, अम्बपाली, बिल्वमंगल एवं तुलसी को अपनी पुरातन दिशा किसी अज्ञात प्रेरणा से बदलनी पड़ी थी । उसी प्रकार कौशल क्षेत्र को प्रतिभा सम्पन्न विशेषताओं की राह पर लाया जा सके ।

आँधी चलती है, तब उसके साथ तिनके-पत्ते और धूलिकण भी जमीन से उठकर आकाश चूमने लगते हैं । ऐसी आध्यात्मिक आँधी, ऐसे चक्रवात, तूफान मचलें, जो जड़ता को सक्रियता में बदल सकें । परिस्थिति को कुछ से कुछ बना दें । पिछले दिनों योगी अरविन्द, महर्षिरमण आदि का ऐसा ही एक प्रयोग हो चुका है । अब उसी की पुनरावृत्ति पूज्य गुरुदेव की सूक्ष्म एवं प्रचण्ड साधना के रूप में हो रही है और उसके द्वारा ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता देखा जा सकता है, जो शिव के वीरभद्रों जैसा हाहाकारी चमत्कार खड़ा कर सके । हमें आशा रखनी चाहिये कि अगले दिनों पाँचों विभीषिकायें निरस्त होंगी, संकीर्ण स्वार्थपरता मिटेगी तथा लोक कल्याण की, भाव संवेदना प्रधान परम्परायें जीवन्त होंगी ।

आत्मक्षेत्र का भावी संकल्प

दिन उगा रहने पर भी कभी-कभी ग्रहण पड़ने, कुहासा छा जाने से अँधेरा जैसा छा जाता है, पर वह स्थायी नहीं होता । वह जंजाल हटते ही दिनकर की प्रखरता पुनः पूर्ववत् दृष्टिगोचर होने लगती है । यही बात इस सृष्टि में समग्र विवेकशीलता, सदाशयता पर भी व्यवधान छा जाने जैसे उदाहरणों के रूप में सामने आती रहती हैं । फिर भी आशाजनक बात यही है कि

स्थिति स्थायी नहीं रहती । अँधेरे का दौरा पड़ता तो है, पर वह टिकाऊ नहीं होता ।

भूतकाल में सतयुगी वातावरण था । भविष्य में भी वह पुनः लौटकर आ रहा है । मात्र वर्तमान ही ऐसा रहा, जिसमें अवांछनीयताओं का भयानक आक्रमण टिड्डी दल जैसा हुआ और उसने लहलहाती फसल को चौपट कर दिया । अब पुनर्जागरण की, पुनर्निर्माण की वेला निकट है और जो बिगड़ चुका है फिर बन जायेगा । जीर्णोद्धार की निति अपनाने पर भी पुरातन खण्डहरों की नींव पर भव्य भवन बनाये जा सकेंगे । उल्लास भरे नवयुग की पुनः प्राण प्रतिष्ठापना हो सकेगी ।

चर्चा अध्यात्म की हो रही है । वह कोई जादूगर नहीं । व्यक्ति और समाज को आच्छादित, प्रभावित, सुव्यवस्थित करने वाली एक प्रक्रिया है जिसमें प्रधानतया चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को उत्कृष्टता से सरावोर रहने की स्थिति बनती है इसलिये उसे व्यक्ति विज्ञान, समाज विज्ञान, नीतिशास्त्र और प्रगति परम्परा भी कह सकते हैं । उस प्रक्रिया को जन-जन के मन में उतारने से बात बनती है । मात्र कुछ जिज्ञासुओं के दार्शनिक प्रतिपादन का वह विषय नहीं है । कुछ भावुक जन इसे कथा पुराण या सत्संग प्रवचन की तरह सुनते रहे और इस कान से उस कान निकालते रहे तो भी कुछ बात नहीं बनती । धार्मिक कर्मकाण्डों के माध्यम से दृश्य के साथ भावना का समन्वय करते हुए उसे हृदयंगम करना पड़ता है ।

पूजा पाठ की प्रक्रिया में महानता के इष्ट को सामने रखकर उसके समतुल्य बनने के लिये-पात्रता विकसित करने के लिये धूप-दीप, अक्षत, पुष्प आदि से अर्चना का अविच्छिन्न अंग बनाने का प्रयास किया जाता है । सर्वतोमुखी उत्कृष्टता की विभूतियाँ तथा अतीन्द्रिय क्षमता कही जाने वाली ऋद्धि-सिद्धियाँ अनायास ही उभर पड़ती और निर्झर की तरह फूटकर अपने शीतल प्रवाह से असंख्यों का भला करती हैं ।

ईश्वर को प्रशंसा या भेंट उपहार के माध्यम से

बहकाया–फुसलाया नहीं जा सकता और न मनोकामनाओं के रूप में वह पाया जा सकता है । हमारे बदले का पुरुषार्थ भगवान पूरा करेगा या नाम रटते ही दुष्कर्मों के प्रतिफल से छुटकारा मिलता रहेगा यह मान्यता सर्वथा मिथ्या है । उनका परिमार्जन तो प्रायश्चित द्वारा ही किया जाता है और समाज को जो क्षति पहुँचायी गयी है उनकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती है । एक हाथ से दुष्कर्म और दूसरे हाथ से पूजा पाठ करते रहे तो स्थिति उपहासास्पद ही बनेगी ।

आत्मिक प्रगति के लिये दो ही प्रमुख साधन हैं–एक तप जिसे संयम कहते हैं, यह प्रत्यक्ष जीवन में प्रयुक्त होता है । दूसरा साधना–योग जिसका तात्पर्य है शालीनता के, सत्प्रवृत्तियों के समुच्चय परमेश्वर के साथ अपने आप को पूरी तरह जोड़ देना । मन को कुत्साओं से हटाकर महानता के उदार आदर्शों के साथ अपनी विचारणा और भावना को पूरी तरह जोड़ देना । तपश्चर्या से जीवन का बहिरंग पक्ष निर्मल बनता है और योग से अन्तरंग को उत्कृष्टता की चरम सीमा तक उछाल देने का क्रम आजीवन अहर्निश चलाते रहना पड़ता है । संक्षेप में चिन्तन में उत्कृष्टता, चरित्र में आदर्शवादिता और व्यवहार में शालीनता का प्रगाढ़ समावेश करने की अनवरत प्रयत्नशीलता ही तप और योग की आत्मा है । इसके लिये कतिपय कर्मकाण्ड ऐसे हैं जिन्हें अपनाने से कर्म के साथ ज्ञान जोड़ देने जैसा सुयोग बनता है, यही है तत्वज्ञान का दर्शन पक्ष ।

अध्यात्म प्रयोजनों के लिये जो कर्म अपनाने पड़ते हैं, उनमें पूजा प्रार्थना के प्रयोगात्मक उपचारों के अतिरिक्त तीन प्रमुख धारायें ऐसी हैं, जिनमें मनःक्षेत्र को नियंत्रित अन्तःकरण को परिमार्जित करने का प्रयोजन सरल पड़ता है । वे तीन हैं (१) जप (२) ध्यान (३) प्राणायाम । इनके माध्यम से दुर्गुणों, दुर्भावों को हटाने और देवत्व का अनुपात बढ़ाने में सहायता मिलती है । भीतरी और बाहरी स्वच्छता इनकी पृष्ठभूमि के साथ जुड़ी ही रहती है । इन्हीं तीनों की शाखा–प्रशाखायें साधना की स्थिति अभिरुचि और मान्तया को देखते हुए निर्धारित करनी पड़ती है । इस निर्धारण में किसी अनुभवी विचारशील और समुन्नत स्तर के

मार्गदर्शक का परामर्श लेना पड़ता है। संक्षेप में यही है आध्यात्म की रूपरेखा। जिसे चेतना की समर्थतायें उभारने का उपक्रम कह सकते हैं। यह भौतिक विज्ञान से किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है। पदार्थ से प्राण की उत्कृष्टता सर्वमान्य है। उसी प्रकार भौतिक विज्ञान की तुलना में अध्यात्म विज्ञान की वरिष्ठता है। भौतिक विज्ञान के आधार पर वस्तुओं को अनुकूल बनाया जाता है, पर अध्यात्म विज्ञान उसकी चेतना को सुयोग्य बनाता है, जो पदार्थों का सही और श्रेष्ठ उपयोग कर सके और भौतिक विज्ञान के श्रम को सार्थक कर सके। चेतना का स्तर निकृष्ट होने पर तो भौतिक उपार्जन का दुरुपयोग भी हो सकता है और उसके कारण व्यक्ति और समाज का घोर अनिष्ट भी हो सकता है, जैसा कि आजकल हो रहा है। यह स्थिति अध्यात्म का स्वरूप विकृत और व्यवहार उपेक्षित हो जाने के कारण ही बन पड़ी। अब भूल के सुधार की अनिवार्य आवश्यकता पड़ रही है अन्यथा प्रस्तुत विपन्नताओं में से एक भी हटेगी नहीं।

यह युग संधि की बेला है। युग परिवर्तन का सुनिश्चित काल यही है। जैसा कि समझा जाता है कि इक्कीसवीं सदी विनाश, पतन और संकटों की होगी। इस प्रकार के कथन साधारण लोग बराबर कहते आ रहे हैं, पर अध्यात्म क्षेत्र की उच्चस्तरीय शक्तियाँ इस विपन्नता से जूझने और समृद्धि-प्रगति का वातावरण बनाने के लिये समय रहते जुट रही हैं और वे दुहरी भूमिका सम्पन्न करेंगी। दूसरे विकास के अभिनव आधार खड़े करेंगी।

अगले दिनों विश्व के बिखराव को समेट कर एक केन्द्र पर लाया जायेगा। बढ़ा हुआ विज्ञान, कौशल, द्रुतगामी परिवहन और राजनैतिक आर्थिक क्षेत्रों का परस्पर गुथ जाना ऐसे आधार हैं जिनके कारण सुविस्तृत संसार एक गाँव -घर की तरह बन गया है। इसकी छुटपुट समस्यायें एक-एक करके हल नहीं की जा सकेंगी वरन् उन्हें एक-एक मुश्त ही सुलझाना होगा। चेचक का उपचार फुन्सियों पर मरहम लगाते फिरने से नहीं रक्तशोधन से होता है। मक्खी-मच्छरों की बढ़ोत्तरी पर उन्हें एक-एक करके मारना कठिन

है । नाले की गन्दगी साफ करने और उस पर चूना फ्रिनायल छिड़कने से ही समाधान बनता है । इसी प्रकार विश्व के हर क्षेत्र और वर्ग में बिखरी हुई अगणित समस्याओं का एक ही हल है कि विश्व को एकता की धुरी से जोड़ दिया जाय और उसके साथ मानवी क्षमता का सिद्धान्त अविच्छिन्न रूप से जोड़ दिया जाय ।

बीसवीं सदी के शेष दिनों में रस्साकसी, विचार संघर्ष और प्रकृति प्रकोप जैसी प्रतिकूलतायें ही हैरान करेंगी, पर साथ ही दूसरी ओर एक काम और भी चलेगा कि सृजन की शक्तियाँ संगठित और क्रिया कुशल होती चलेंगी । इस सदी के अन्त तक वे भी इतनी सामर्थ्य संचित कर लेंगी कि विग्रहों से लोहा ले सकें । और सृजन की आवश्यकताओं को एक जुट होकर समग्र और समुन्नत बना सकें । इसे यथार्थता का पूर्वाभास भी कहा जा सकता है और निष्णातों की भविष्य वाणी भी । जो अगले कुछ दिनों जीवित रहें । वे इस कथन को अक्षरशः व्यवहार में उतरते देखेंगे ।

वसुधैव कुटुम्बकम् और आत्मवत् सर्वभूतेषु के दोनों सिद्धान्त अगले दिनों कार्यान्वित होकर रहेंगे । बिखराव सिमट कर एक धुरी पर केन्द्रित होगा । धरती एक है । मानव समुदाय भी एक होकर रहेगा । शासन की दृष्टि से विश्व राष्ट्र के रूप में एक नया ढाँचा खड़ा होगा । देशों का विभाजन भौगोलिक सुविधा की दृष्टि से होगा और वे एक केन्द्र के अन्तर्गत प्रान्त जिलों की तरह एक केन्द्र के अनुशासन में रहेंगे । फौज, न्यायपालिका, करेंसी, यातायात और संचार एक विश्व के हाथ में रहेंगे । फिर युद्धों की कोई समस्या न होगी । मतभेद पंचायत स्तर पर हल होते रहेंगे ।

विश्व की भाषा एक होगी । अनेक बोलियाँ, भाषायें लिपियाँ होने से हानि यह है कि एक क्षेत्र का मनुष्य दूसरे क्षेत्र में जाकर गूँगा–बहरा हो जाता है । ज्ञान के विश्व व्यापी होने में यह सबसे बड़ी बाधा है । मुद्रण प्रकाशन भी इस बिलगाव से रुकता है । जब भाषा एक होगी, तो एक दूसरे के साथ आदान–प्रदान में कोई कठिनाई न रहेगी । ज्ञान मार्ग के इस अवरोध को अगले दिनों हटाकर ही रहा जायेगा ।

इसी प्रकार एक संस्कृति होगी और एक न्याय व्यवस्था भी। सभी धर्मों और संस्कृतियों का सार तत्व लेकर ऐसी परम्परा का जन्म होगा जिसके अन्तर्गत रहकर सभी को एकात्मा और एक रूपता का अनुभव होता रहे। कानून भी विश्व व्यापी हो। जाति और लिंग के नाम पर बरते जाने वाले भेदभाव समाप्त होकर रहें। धरातल की भूमि आबादी के अनुपात से बँटे। न कोई गरीब रहने दिया जाय और न किसी को अमीर बनने की गुञ्जायश रहे। विश्व नागरिकों के रहन-सहन का एक स्तर रहे। उसमें न किसी को बहुत ऊँचा उठने दिया जाय और न नीचा गिरने दिया जाय। देश, भाषा, जाति, सम्प्रदाय के नाम पर विलगाव की कहीं कोई गुञ्जायश न रहे। धरती माता के सभी पुत्र अपने कर्तव्य और अधिकारों की दृष्टि से समानता का अनुभव कर सकें।

पिछले दिनों कई क्रान्तियाँ हो चुकी हैं। औद्योगिक क्रान्ति, श्रमिक क्रान्ति, जनाधिकार क्रान्ति, सामाजिक क्रान्ति, वैज्ञानिक क्रान्ति, के उभार अपने-अपने क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से उभरते रहे हैं और पहले की अपेक्षा अधिक सफलता अर्जित करते रहे हैं। इक्कीसवीं सदी महान् क्रान्ति की अवधि होगी, इसमें विग्रहों का जड़-मूल से उन्मूलन होगा और भविष्य का ढाँचा ऐसा खड़ा होगा जिसमें बार-बार उलट-'पुलट की, उथल-पुथल की, युद्ध और कुचक्र रचने की कहीं कोई गुञ्जायश न रहे।

इस महाक्रान्ति का सूत्र संचालन अध्यात्म क्षेत्र की अदृश्य शक्तियाँ करेंगी और कठपुतली की तरह भावनाशीलों को उसका निमित्त कारण बनना पड़ेगा। इच्छा या अनिच्छा पूर्वक इस परिवर्तन प्रक्रिया को सम्पन्न करने के लिये युग धर्म उन्हें बाधित कर देगा और सफलता के लिये सृष्टा की वैसी ही इच्छा चरितार्थ होगी जैसी कि इस सृष्टि के आरम्भ में धरती के अग्नि पिण्ड को ब्रह्माण्ड की इतनी सुन्दर कलाकृति के रूप में बदल सकी। विश्व चेतना की वैसी ही इच्छा फिर से नये सिरे से अवतरित हो रही है। इस सृजन प्रयोजन के लिये उच्चकोटि के व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ेगी, अनुकूलता अवतरित करने वाले अदृश्य वातावरण

की भी । यह सब विनिर्मित हो रहा है और अगले दिनों बीज से अंकुर, अंकुर से वृक्ष, वृक्ष से झुरमुट वाला दिव्य उद्यान बनेगा । अपनी इस धरती पर स्वर्ग का अवतरण और मनुष्यों में सद्भावनाओं का देवोपम उदय दृष्टिगोचर होगा ।

इसी सुखद भविष्य के संचालन के लिये अध्यात्म की उच्च शक्तियाँ कटिबद्ध हो रही हैं और क्रमिक सफलता की ओर तेजी से अग्रसर हो रही हैं । इसकी एक छोटी-सी झलक झाँकी युग निर्माण योजना के संचालक सूत्र के विराट् कर्तत्व के रूप में देखी जा सकती है ।

अध्यात्म का वैज्ञानिक, प्रचण्ड, क्षमता सम्पन्न स्वरूप देखने से पूर्व उसकी अवधारणा एवं क्रिया पद्धति को सही करना पड़ेगा । यद्यपि वह सही होगा, तो उससे बढ़कर चेतना क्षेत्र चमत्कार उत्पन्न करेगा जैसे कि पदार्थ जगत में भौतिक विज्ञान ने प्रस्तुत किये हैं । आज तो विकृतियों और भ्रान्तियों ने हर क्षेत्र को जकड़ा है । अध्यात्म क्षेत्र में जादूगर भर गये हैं जो चित्र-विचित्र करामातों से भावुकजनों को भ्रम जंजाल में फँसाते और मूल दर्शन पर कुठाराघात करते हैं । कौतुक कौतूहलों का प्रदर्शन करना नहीं, समीप आने वालों को देवमानव बनाना और अपने प्रयासों से लोक प्रवाह को वातावरण को बदल देना सिद्ध पुरुषों का काम है । यही पूर्वकाल में था और यही भविष्य में भी रहेगा । अध्यात्म के इसी शाश्वत "साधना से सिद्धि" वाले सिद्धान्त का सही रूप में प्रस्तुतीकरण आज समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है । जन मानस की यदि ब्रेनवाशिंग की जा सके तो पुनः उन आदर्शों की स्थापना संभव है जिनके माध्यम से कभी अध्यात्म को उच्च प्रतिष्ठित माना जाता था । धर्म-सम्प्रदायगत मान्यता-परम्परा के स्वरूप की अध्यात्म के व्यक्तित्व के सर्वांग परिष्कार वाले स्वरूप से हुई मिलावट ही इस भ्रान्ति का मूल कारण है । धर्म कभी हिंसा नहीं सिखाता । विवेक का धर्म पर कड़ा अंकुश है । अतः मान्यतायें परिस्थितियों के अनुरूप विचारशीलों को बदलती रहनी चाहिये, ये तथ्य जन-जन के गले अगले दिनों उतरेंगे तो धर्म संबंधी संव्याप्त भ्रान्तियाँ मिटते देर न

लगेगी । अध्यात्म के विज्ञान सम्मत स्वरूप को भावी पीढ़ी जब अपनी तर्क सम्मत भाषा में प्रतिपादित होते देखेगी तो अन्दर से अध्यात्म अनुशासनों को हृदयंगम की ललक उठेगी ।

प्रज्ञा अभियान के सारे निर्धारण दैवी सत्ता द्वारा इस शिक्षण रीति से संचालित होते रहे हैं कि सभी देखने वाले आश्चर्यचकित होकर रह गये हैं । यह सम्मोहन नहीं वास्तविकता था । अध्यात्म क्या था ? क्या हो गया ? क्या होना चाहिये ? इस तथ्य का प्रकटीकरण एवं जन साधारण का मार्गदर्शन करने हेतु एक ज्वलन्त उदाहरण की, प्रकाश स्तम्भ की आवश्यकता थी । पूज्य गुरुदेव के जीवन दर्शन के रूप में उसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । जो भी कुछ गतिविधियाँ इस विराट प्रज्ञा परिवार की दृष्टिगोचर होती हैं अथवा जिनकी भावी फलश्रुतियाँ वर्णित की जाती हैं, वे यह आश्वासन दिलाती हैं कि "सही अध्यात्म" का अवलम्बन किसी भी दृष्टि से घाटे का सौदा नहीं है । इसे अब अगणित व्यक्तियों के कायाकल्प के माध्यम से देखा जा सकता है, जो देवी तंत्र से जुड़े एवं स्वयं को अंगुलिमाल, अम्बमाली की तरह बदलकर अपना जीवन धन्य बना लिया ।

स्वयं गुरुदेव के जीवन की जितनी गतिविधियाँ प्रकट रूप में सर्वविदित रही हैं, वे भी अध्यात्म अवलंबन की गरिमा को सिद्ध करती हैं । इसके अतिरिक्त अदृश्य और अविज्ञात न जाने कितना ऐसा है जिस पर जानबूझकर पर्दा अभी तक डाला जाता रहा है । जैसा उनका आदेश था, उन सब का प्रकटीकरण अब उनके स्थूल शरीर के महाप्रयाण के बाद क्रमशः किया जा रहा है । ये प्रसंग परम पूज्य गुरुदेव की बायोग्राफी के रूप में शीघ्र प्रकाशित किये जा रहे हैं, यहाँ उसका संक्षिप्त हवाला मात्र ही दिया गया है । आशा है यह सब प्रकाश में आने पर अध्यात्म तत्व की गरिमा विज्ञान सम्मत रूप में जन-जन को समझाने पर विवश करेगा । सही दिशा में चलने की प्रेरणा देगा ।

युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा